TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_182056

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/M95S Accession No. G.H. 1497

Author मुरनजी, वी० 'गुञ्जन'

Title शान्ति - पुकार, 1952

This book should be returned on or before the date last marked below.

शक्ति-पूजा

(पौराणिक नाटक)

नाटककार

वी. मुखर्जी 'गुञ्जन'

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

Checked 1965

Checked 1969

मूल्य ?।)

मुद्रक
अमरजीतसिंह नलवा
सागर प्रेस
काश्मीरी गेट दिल्ली६

प्राक्कथन

तब मैं बहुत ही क्षीणकाय अवस्था में दिल्ली शहर से दूर एक अस्पताल के बिस्तरे पर पड़ा जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था। औरों की तरह मैं भी अपने बारे में यही सोच बैठा था कि अब नहीं बचूंगा। लेकिन मरने से पहले मैं 'शक्ति-पूजा' अवश्य समाप्त कर जाना चाहता था। यह कामना मेरे अंदर बलवती बनी रही। डॉक्टर, नर्स, दोस्त, जाने-पहचाने सभी लिखने-पढ़ने से रोकते; किन्तु सबकी आँखें बचाकर लेटे ही लेटे लिखता-पड़ता रहा। यद्यपि शारीरिक शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी; किन्तु मानसिक शक्ति में मैंने कोई दुर्बलता नहीं आने दी।

बंगाल में 'दुर्गा-पूजा' बहुत प्रसिद्ध है। मैंने जब-जब यह पूजा देखी तब-तब यही भावना मेरे मष्तिष्क को उद्वेलित करती रही कि यह महिषासुर कितना शक्तिशाली होगा,—जिसने देवी से टक्कर ली। मुंह से कई बार निकला—'धन्य महिषासुर'। मैंने उसके जीवन का अध्ययन शुरू किया।—स्कन्दप्रभा, स्कन्दकाशी, स्कन्दनागर, पद्मासृष्टि, श्री-श्रीचण्डी, देवी भागवत्, मार्कण्डेय पुराण एवं दुर्गा तथा महिषासुर के सम्बन्ध में अनेक लेख, अनेक रचनाएँ पढ़ीं। इनमें महिषासुर को एक उद्धत असुर के रूप में ही चित्रित किया गया है। किन्तु मैंने अपने महिषासुर को दूसरे रूप में देखा। उपरोक्त ग्रन्थों के महिषासुर से 'शक्ति-पूजा' का महिषासुर अपना अलग महत्व रखता है। अवश्य यह एक पौराणिक कथा है। हो सकता है आप यह कहेंगे,—'आपको स्वतन्त्रता से काम लेने का क्या अधिकार है ?'—तो मैं इतना ही कहूँगा कि कथा को विकृत न करते हुए किसी के चरित्र में कोई खूबी हो तो उसे नई स्याही से अंकित करने की स्वतन्त्रता तो लेखक को होनी ही चाहिए। असुरों के प्रति घृणा की भावना बहु-प्रचारित है। किन्तु मैंने घृणा के स्थान पर सम्मान और श्रद्धा को ही आसन दिया है। इसका यदि आपको बुरा लगे तो मुझे क्षमा करें। मैंने अपने महिषासुर को एक

महान् शक्तिशाली के रूप में चित्रित किया। वह अपने कर्त्तव्य पर हिमालय की तरह अटल है। उसको अपनी शक्ति पर असीम विश्वास है। देवताओं की 'संघ-शक्ति' से भी वह टक्कर लेता है। उसकी वीरता देखकर भगवती दुर्गा भी दंग रह जाती है।

हाँ, एक जगह और भी मैंने स्वतन्त्रता से काम लिया। देवी भागवत् में—'दनु पुत्र रम्भासुर महिषी के गर्भ में अपनी वर्षों की साधना संचित रख देने के बाद इन्द्र के हाथ मारा जाता है। और तब महिषी अग्नि में जलकर पति के साथ सती हो जाती है। जब वह अग्नि-कुण्ड में कूद पड़ती है तब एक भयंकर असुर उस अग्नि से निकल आता है जिसका नाम महिषासुर होता है।' इस ऐन्द्रजालिक घटना को मैंने मानवीय रूप दिया है। मैंने महिषी को जलकर मरने नहीं दिया। 'शक्ति-पूजा' में जीवित रहकर माता महिषी ने उल्लेखनीय भाग लिया है। इस स्वतन्त्रता के लिए मैं आप सब से क्षमा चाहता हूँ। इस पौराणिक कथा में वैसे ही नाटकीय सामग्री नहीं, फिर एक पूरे नाटक की! इसलिए बहुत जगह लेखक को कल्पना का आश्रय लेना पड़ा।

'शक्ति-पूजा' समाप्त होने के साथ ही नए जीवन की आशा दिखाई पड़ने लगी। मैं धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। शारीरिक बल मिलता गया। फिर जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। मुझे रोग-मुक्त करने में जिन व्यक्तियों ने आंतरिक स्नेह एवं सक्रिय सहयोग प्रदान किया उनमें डा. चिन्मय रंजन मुखर्जी, मित्र हरनामसिंह 'प्रवासी' श्रीएलविन व श्रीमस्तराम को मैं कभी नहीं भूल सकता। अस्पताल में दाखिल होने के बाद सबसे बड़े डाक्टर—डा. कृष्णा साहब का मधुर व्यवहार एवं असीम प्रेम तो मेरे जीवन की अमूल्य निधि ही बन गई। मैं उनके निकट चिर कृतज्ञ हूँ। देखा जाय तो इन लोगों के उद्योग ने ही मुझे मृत्यु के मुंह से छीन लिया। 'शक्ति-पूजा' तो इन्हीं लोगों की है।

दिल्ली १५-६-५१ —'गुञ्जन'

शक्ति-पूजा

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

निर्जन वन-प्रान्त

[तपस्वी रंभासुर का कटा हुआ मुण्ड लेकर उन्मत्त भाव से इन्द्र का प्रवेश। बाएँ हाथ में मुण्ड एवं दाहिने हाथ में शोणित-युक्त तलवार।]

इन्द्र—(विद्रूप हँसी हँसता है। मुण्ड की ओर देखकर) देव-दैत्य-जयी पुत्र के पिता ! हः हः हः हः !—(दूसरी ओर दृष्टि करके) करंभासुर के बाद, चलो इस रंभासुर का भी अंत कर दिया। इतने दिनों बाद देवताओं का भाग्याकाश बिलकुल निर्मेघ हो गया। ओह ! कितनी बड़ी दुश्चिन्ता मस्तक पर मँडरा रही थी। (पुनः मुण्ड की ओर घृणापूर्ण दृष्टि डालते हुए व्यंग से) मुझे दुःख है रंभ, कि तुम अग्निदेव के वरदान का लाभ नहीं उठा सके। तुम पुत्र-मुख-दर्शन से पहले ही संसार से रूठ गए। तुम्हारी वर्षों की साधना···

[बात काटते हुए देव-गुरु बृहस्पति का प्रवेश]

बृहस्पति—व्यर्थ नहीं गई !

इन्द्र—(महान् आश्चर्य से) गुरुदेव ! (प्रश्न-सूचक दृष्टि)।

बृहस्पति—हाँ, वत्स ! अग्निदेव का वरदान व्यर्थ नहीं गया। मृत्यु से पूर्व महिषी के गर्भ में उसने वर्षों की साधना संचित रख दी। आकाश, वायु, अग्नि सभी साक्षी हैं।

इन्द्र—(उद्वेग के स्वर में) कहाँ है वह महिषी ?—मुझे महिषी का मस्तक चाहिए ! महिषी का !!—

बृहस्पति—क्या तुम एक निरस्त्र जीर्ण-शीर्ण तपस्वी का वध करने के बाद·····

इन्द्र—(बात काटते हुए) वह तपस्वी नहीं था गुरुदेव ! देवताओं के लिए साकार धूमकेतु था। वह दानव था।

बृहस्पति—तो अब तुम यह चाहते हो कि एक नारी-हत्या का पाप भी मोल लिया जाय !

इन्द्र—वह नारी नहीं; राक्षसी है, मायाविनी है। वरदान-प्राप्ति का समाचार पाते ही तो मैं दौड़ा गुरुदेव ! किन्तु इसी बीच प्रीति-सम्भाषण का अवसर भी उसने प्राप्त कर लिया ! मायाविनी नहीं तो और क्या !!—

बृहस्पति—तुम रंभासुर का वध कर सकते हो, महिषी का मस्तक भी ले सकते हो; किन्तु निठुर नियति पर विजय नहीं पा सकते ! रंभासुर के भाई करंभासुर को छल से मारने के बाद निर्दोष, निरस्त्र इस तपस्वी का वध करके तुमने अपनी वीरता पर कालिमा पोत ली देवेन्द्र !

इन्द्र—तो आप यह चाहते हैं गुरुदेव, कि देवताओं का भाग्याकाश एक बार फिर अन्धकारमय हो जाय ?

बृहस्पति—देवताओं का भाग्याकाश देवताओं के कर्म से ही अन्धकारमय होगा। अन्धकार का प्रथम सूत्रपात करंभ को छल-पूर्वक मारना है।

इन्द्र—शत्रु को छल से, बल से या कौशल से मारना विधान-सम्मत है।

बृहस्पति—किन्तु रण-भूमि में ; तपस्या की वेदी पर नहीं !

इन्द्र—तपस्या और वरदान का द्वार दानवों के लिए बंद हो जाना चाहिए गुरुदेव !

बृहस्पति—तो उसी दिन से यह समझ लेना होगा कि देवों का

देवत्व भी समाप्त हो गया वासव !

इन्द्र—बार-बार देवताओं की करुणा का लाभ उठाकर इन दानवों ने स्वर्ग-भूमि को पद-दलित किया है। देव-कन्याओं पर असंख्य अत्याचार किये हैं। संसार में झंझा का सृजन किया है। किन्तु अब भी देवताओं को·····

बृहस्पति—(बात काटते हुए) ज्ञान नहीं हुआ। उनकी आँखें नहीं खुलीं। यही न ? अत्याचारी को उचित दंड देना अन्याय नहीं है देवराज ! किन्तु एक व्यक्ति के लिए समग्र जाति पर अन्याय करना देवताओं को शोभा नहीं देता। देवताओं के उदार अन्तःकरण के आगे देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मानव सभी समान हैं। देव-करुणा के लिए सबका समान अधिकार है। एक साधारण दानव की वर-प्राप्ति पर इतने विचलित हो गए ?

इन्द्र—साधारण नहीं गुरुदेव ! देव-दैत्य-जयी पुत्र का वरदान !

बृहस्पति—तो क्या हुआ ! अमरता का तो नहीं ?

इन्द्र—इन्द्र अमरता से उतना नहीं डरता, जितना पवित्र जन्मभूमि पर अत्याचार तथा स्वजाति पर प्रहार से।

बृहस्पति—अन्याय या अत्याचार का प्रतिफल मिला करता है देवेन्द्र ! यह स्थायी नहीं होता। इसके लिए तुम्हें भीत नहीं होना चाहिए था !

इन्द्र—मैंने जो-कुछ किया, वह देव-जाति की रक्षा के लिए।

बृहस्पति—अन्याय और अधर्म से कभी जाति की रक्षा नहीं होती। वह देखो, दिशाएँ तुम्हारी कायरता पर हँस रही हैं। दो-दो हत्याओं का पाप अकेले तुम पर नहीं, समग्र देव-जाति पर एक भीषण प्रलय का सृजन करता चला आ रहा है। अग्नि का एक स्फुलिंग ही भयंकर दावानल के लिए काफी होता है। (कटे मुण्ड की ओर अंगुलि-निर्देश करते हुए) तपस्वी के रक्त का एक-एक बूँद महानाश

का आह्वान कर रहा है। जाओ !—जाओ देवराज ! नारी-हत्या करके अब और इस घृणित यज्ञ में आहुति मत डालो !

[प्रस्थान]

इन्द्र—(अपने-आप) *सब-कुछ व्यर्थ हुआ। शत्रु का विनाश भी मेरे प्रतिकूल पड़ा। जन्मभूमि और जाति के लिए मैंने जो-कुछ किया वह कलंक सिद्ध हुआ। मैंने किसी से कोई परामर्श भी नहीं किया। देवताओं का भाग्याकाश और भी मेघाच्छन्न हो गया। मेरे ही कारण ! मेरी ही भूल से भयंकर आँधी उठने वाली है। मेरी वीरता कहाँ सो गई थी ! अस्त्र देकर भी तो उसे मैं सम्मुख-संग्राम में पराजित कर सकता था। मतिभ्रम ! मतिभ्रम !! क्षमा करो !—क्षमा करो, गुरुदेव !*

(द्रुतवेग से प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

निर्जन पथ

[महिषी का वेग से प्रवेश]

महिषी—(खुली हुई केश-राशि एवं अङ्ग-अङ्ग में घृणा का भाव । आप-ही-आप) थू !—ऐसी वीरता पर हजार बार थू !!—वर्षों की तपस्या से जर्जरित शरीर पर अस्त्राघात करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई इन्द्र ! क्या यही देवत्व है ?

मेरे हृदय में जो शंका उठी थी वही सच होकर रही । यदि मैं समय रहते नहीं आ पाती तो दुष्ट ने सारी साधना व्यर्थ कर दी होती । याद रखो वासव, तपस्वी का यह तप्त रक्त व्यर्थ नहीं जायगा । तुम्हारी कपटता का परिचय संसार को शीघ्र ही मालूम होने वाला है । तुमने सोचा होगा, सूर्यास्त के बाद अन्धकार के पीछे किया हुआ पाप ढका रह जायगा । किन्तु; अग्नि, वायु, आकाश सब-की आँखें खुली थीं । किसको धोखा दोगे ? (उन्मादिनी की तरह हँसती है)—'हीः हीः हीः हीः !' (फिर तुरंत स्वर में परिवर्तन लाती हुई) एक नारी के सुकोमल कल्पना-सौध में आग लगाने वाले इन्द्र, अब तुम भी सुख-शान्ति की नींद नहीं ले सकते । मेरी तरह !—मेरी तरह तुम भी वर्षों अशान्ति भोग करोगे । नारी के अश्रु-जल में कितनी शक्ति है इसका परिचय तुम्हें आज से ही मिलता रहेगा । जाओ,—शची के आँचल में मुँह छिपा लो । आज से संसार को अपना कलंकित मुख मत दिखाओ !

[हाथ में तलवार लेकर प्रतिहिंसा के भाव से चिक्षुर का प्रवेश]

चिक्षुर—कहाँ है,—कहाँ है वह पाषंड ! निरस्त्र का वध करने

वाला कायर ! (महिषी पर दृष्टि पड़ते ही आश्चर्य से) आप ! आप कहाँ !! नहीं,—नहीं आप राज-भवन लौट जायँ । मैं ही उसे उचित प्रतिफल दूँगा । इन्द्र ने यह सोचा होगा कि दानवों की धमनियों में रक्त-संचार बंद हो गया । (व्यंग से) किन्तु, इन्द्र, दुर्भाग्य ! दानवों के रक्त की उष्णता में कभी शीतलता नहीं आती । नस-नस में प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़क रही है । करंभासुर का वध करके तुमने सोए हुए सिंहों को जगा दिया और अब सम्राट् रंभासुर की हत्या करके दावानल प्रज्वलित कर दिया । सेनापति चिक्षुर का खड्ग ही तुम्हारे लिए काफी है इन्द्र !

[दानवी का उन्मादिनी भाव से प्रवेश]

दानवी—पिता की हत्या के बाद दैत्य-पति का वध । असह्य है ! असह्य है सेनापति !

चिक्षुर—चिन्ता न करें देवि ! सेनापति चिक्षुर अब भी जीवित है । दानवों की शक्ति का परिचय देवगण भूल गए मालूम पड़ता है । एक बार फिर अस्त्रों की खनखनाहट से दिशाओं को कँपाना ही होगा ।

महिषी—किन्तु; पहले चिता तैयार करो सेनापति ! पति के साथ एक ही चिता पर यह वैधव्य की ज्वाला शान्त कर दूँ !

दानवी—(आश्चर्य से) यह क्या माता ! देव-दैत्यजयी पुत्र का जन्म क्या नहीं होगा ! दैत्यपति रंभासुर की सारी साधना क्या यों ही व्यथ चली जायगी । धैर्य धरो माता !

महिषी—पति-वियोग की वेदना असह्य है दानवी ! यह मुझसे नहीं सही जाती ।

दानवी—पितृ-शोक की व्याकुलता लिये मैं भी जी रही हूँ । सिर्फ इसलिए कि इसका प्रतिशोध लूँगी, दानव-जाति विपत्तियों से नहीं डरा करती और तुम तो देव-दैत्यजयी पुत्र की भावी जननी हो ।

तुम राजमाता हो। पति की निर्दय हत्या का बदला क्या तुम नहीं लेना चाहतीं ?

महिषी—बदला !—हाँ, बदला !!—अवश्य बदला !!!—मैं दानव-कुल की रानी हूँ। मेरे अंदर न जाने कहाँ से यह दुर्बलता आ गई थी ! मैं देव-दैत्यजयी पुत्र को जन्म दूँगी। इन्द्र, तुम्हारी चाल सफल नहीं हो सकती। मैं तुमसे बदला लूँगी ! बदला !!

दानवी—अवश्य। नहीं तो संसार यह कहेगा कि दैत्य-कुल की नारियों का रक्त निस्तेज पड़ गया। कभी नहीं ! सिंहिनी के गर्भ से सदा सिंह-शावक ही जन्म लेते रहेंगे, शृगाल नहीं, दैत्य-कुल का एक भी रमणी जब तक जीवित रहेगी तब तक किसी भी जाति के अन्याय या अत्याचार को वह सहन नहीं करेगी।

महिषी—ठीक कह रही हो दानवी ! दैत्य-कुल की रमणी को दुर्बलता शोभा नहीं देती। अब कठोर हो गई हूँ। भयंकर कठोर। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि दैत्य-कुल के प्रति इस अन्याय के प्रतिशोध के लिए आज से हिमालय की तरह अडिग रहूँगी।

दानवी—और यह दानवी आपकी प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए घर-घर घूम-घूमकर सुप्त सिंहों को जगायगी।

चिक्षुर—दानव-सिंह कभी नहीं सोते देवि ! सामान्य खटका होते ही भयंकर गर्जना के साथ शत्रु पर टूट पड़ते हैं। (**स्वर में नम्रता लाते हुए**) आइए, पहले हम मृत सम्राट् को यथोचित राजकीय सम्मान से विभूषित करें।

(**तीनों का प्रस्थान**)

[**पट-परिवर्तन**]

तृतीय दृश्य

इन्द्रपुरी

[पर्दा उठने के साथ ही नर्तकी 'मालती' का नृत्य प्रारंभ। शची सिंहासन पर बैठी है। गायिका चित्राङ्गी वीणा लिये नीचे बैठी है।]

मालती का वंदना-नृत्य।

[नृत्य के अन्त भाग में नर्तकी का बायाँ हाथ ऊपर दीप लिये रहने का भाव और दाहिना हाथ इन्द्राणी के चरणों की ओर झुका हुआ—इस मुद्रा में नृत्य समाप्त होता है।]

शची—सुन्दर, *मालती! देवेन्द्राणी को तूने मुग्ध कर दिया।* (स्वर में कुछ परिवर्तन लाती हुई चित्राङ्गी की ओर मुँह करके) *अच्छा, चित्रांगी! आज तो कोई ऐसा गीत सुना जिससे मेरा रोम-रोम गा उठे। अपनी कुशल अंगुलियों से वीणा के इन सुप्त तारों को ऐसे झंकृत कर दे जिससे मैं एक नए विश्व में विचरण करने लगूँ।*

[कहने के साथ ही चित्राङ्गी का वीणा-वादन प्रारम्भ एवं धीरे-धीरे गीत-कंठ की मधुर-ध्वनि। नर्तकी—मालती—एक ओर बैठ जाती है और चित्राङ्गी गाती है।]

कमलिनी! उठ, नयन अपने खोल!
रात बीती पिय-विरह की
मिलन का मधु-प्रात आया।
आ रहे हैं सजन तेरे
वायु यह संदेश लाया॥
विरहिणी! तज मान, अब तो बोल॥

कमलिनी ! उठ,·····!!
बात बीती सब भुला दे
प्राण के मधु बैन सुनके।
बाँह की माला बनाकर
तू गले में डाल उनके॥
प्रणयिनी ! अब, चंचु में मधु घोल !
कमलिनी ! उठ,·····!!
बंद पंखुड़ियाँ बिछा दे
प्यार के आगे सजन के।
हृदय का मकरंद लुटा दे
आज सुभगे, एक बन के।
सुनयनी ! मत प्यार का कर मोल !
कमलिनी ! उठ,·····!!

[धीरे-धीरे गीत समाप्त होता है]

शची—*चित्राङ्गी, तेरे कंठ में कितनी मादकता है। कुछ देर के लिए जैसे मैं सब-कुछ भूल गई। जी चाहता है वीणा के तारों पर तेरी कुशल अंगुलियों का नर्त्तन कभी बंद न हो। एक और—*

[इतने में इन्द्र का अर्द्ध-उन्मत्त भाव से प्रवेश। तीनों उठ खड़ी होती हैं]

इन्द्र—*अब और नहीं शची ! बस करो। वह देखो, स्वर्ग के वातायन से प्रलय की सूचना आ रही है। चित्राङ्गी, अब इन वीणाओं को मत छेड़ो। इनमें से हजार-हजार सर्प फन फैलाए भयंकर फुफकार के गर्जन से दशन को दौड़ेंगे। इन्हें हटा दो,—इन्हें हटा दो, चित्राङ्गी ! नर्तकी, जाओ।—आज से विश्राम लो। फिर एक बार,—फिर एक बार भाग्य-चक्र विराट् गति से घूमने वाला है।*

[चित्राङ्गी का वीणा लेकर प्रस्थान। पीछे-पीछे नर्त्तकी मालती भी जाती है।]

शची—(उद्विग्नता के स्वर में) क्या हुआ ?—क्या हुआ नाथ ??

इन्द्र—वही—वही, जिसकी कभी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

शची—वह क्या ?

इन्द्र—स्वर्गपुरी में दुर्योग ! भयंकर दुर्योग !!—और उस दुर्योग में देवराज इन्द्र की सुख-शांति की विदाई।

शची—यह क्या कह रहे हैं नाथ ?

इन्द्र—हाँ, शची ! निठुरा नियति ने इन्द्र को धोखा दिया। रंभासुर के पुत्र का जन्म निश्चित है। मैंने उसकी हत्या करके जगत् के सामने इन हाथों को व्यर्थ ही रक्त-रंजित किया। देव जाति के कल्याण का कार्य देव जाति के लिए अभिशाप बना। देवगुरु को सब-कुछ मालूम हो गया। वे मुझसे रुष्ट हो गए। राजा का यह पद कितना कंटकाकीर्ण है ! राजा न होकर यदि मैं एक साधारण देवता होता तो आज मुझे इतनी चिंता तो न होती !

शची—धैर्य धरें स्वामी ! राज-काज में ऐसा हुआ ही करता है। गुरुदेव को मैं मना लूँगी। मैं उनसे क्षमा मागूँगी।

इन्द्र—क्षमा से अन्याय तो नहीं धुल जायगा शची ! आने वाली विपत्ति तो नहीं रुकेगी !

[कार्तिकेय का प्रवेश]

कार्तिकेय—रुकेगी !—रुकेगी, देवेन्द्र ! आप चिंतित न होइए, गुरुदेव से मुझे सब-कुछ मालूम हो गया। मैंने उनसे क्षमा भी माँग ली। कितना विशाल अन्तःकरण !

इन्द्र—(कुछ आश्चर्य-जनक हर्ष के साथ) क्षमा दे दी ! गुरुदेव ने क्षमा दे दी कार्तिकेय ?

कार्तिकेय—हाँ, देवराज ! आप चित्त की अधीरता को शांत कीजिए। धनुष से निकला हुआ बाण तो अपना कार्य करके ही रुकेगा। आइए, अब हम लोग उसका प्रतिकार सोचें। भूल किससे नहीं होती ! लेकिन उसकी चिंता में व्यर्थ समय नहीं खोना चाहिए। भूल के समाधान का पथ ढूँढ़ना होगा।

इन्द्र—बताओ—बताओ—षडानन ! वह कौन-सा पथ है ?

कार्तिकेय—राज-सभा बुलाई जाय।

इन्द्र—फिर ?

कार्तिकेय—समग्र सभासदों के सम्मुख आप स्थिति को स्पष्ट करें, गुरुदेव का विशेष आमन्त्रण पर मैं लाऊँगा। छोटी - सी घटना पर देवजाति को इतना विचलित होते देखकर संसार क्या कहेगा महाराज !

इन्द्र—वासव विचलित होना नहीं जानता स्कन्द ! सिर्फ गुरुदेव को दुःखित करने का ही मुझे खेद है।

कार्तिकेय—तो पहले गुरुदेव के पास ही चलूँ !

[प्रस्थान]

इन्द्र—जाओ, षडानन ! भूल से हुए इस अन्याय की कालिमा को मिटा सको तो तुम्हारा कृतज्ञ हूँगा देव सेनापति !

[यवनिका]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

मार्ग

[नेपथ्य में शंख, घंटे, मृदंग आदि बजने की ध्वनि। दैत्यपुरी में महिषा के पुत्र-जन्म पर उत्सव। गली-गली में शुभ-संवाद का अपने-आप एक दूसरे से प्रचार। चारों ओर खुशियाँ!

एक दैत्य-पुरुष का अपनी स्त्री के साथ प्रवेश। स्त्री के मस्तक पर आम्र-शाखायुक्त कलश है।]

स्त्री—*राजकुमार का चेहरा-मोहरा तो अविकल मेरे कुमार-जैसा ही है।*

पुरुष—*मैं भी सोचूँ, भला एक और सिंहासन बनवाने की मंत्री महोदय को क्या आवश्यकता आ पड़ी! अब मालूम पड़ा।*

स्त्री—*सिंहासन?* (पति पर प्रश्न-सूचक दृष्टि।)

पुरुष—*हाँ, हाँ! सिंहासन। राजकुमार के लिए तो है ही। एक और चाहिए न! तुम्हारे कुमार के लिए। चेहरा जो मिलता-जुलता हुआ। राजमाता जी, नमस्कार!*

स्त्री—(सलज्ज) *चलो, हटो भी!*····

[दोनों का प्रस्थान। साथ ही विपरीत दिशा से दो दैत्य-कन्याओं का सिर पर आम्र-शाखायुक्त कलश लिये प्रवेश]

प्रथम दैत्य-कन्या—(अपनी सखी से) *सुना, तुमने?*

द्वितीय दैत्य-कन्या—*क्या?*

प्रथम दैत्य-कन्या—*उन्नत भाल और बड़ी-बड़ी आँखों से युक्त जब राजकुमार का जन्म हुआ तो एक असीम प्रकाश-पुञ्ज से भवन कुछ क्षण के लिए आलोकित हो गया।*

द्वितीय दैत्य-कन्या—आखिर पिता की वर्षों की तपस्या का फल जो हुआ।

प्रथम दैत्य-कन्या—आज मेरा गीत सुनना।

द्वितीय दैत्य-कन्या—और मैं नृत्य से राज-भवन को मुखरित कर दूँगी।

[इतने में नेपथ्य से संगीत की एक लहर उठती है।]

प्रथम दैत्य-कन्या—वह सुनो, उत्सव प्रारंभ हो गया।

द्वितीय दैत्य-कन्या—हाँ, जरा जल्दी चलो!

[दोनों का प्रस्थान। दूसरी ओर से दो दैत्य-पुरुषों का प्रवेश]

प्रथम दैत्य-पुरुष—अब तो दानवों को सम्राट् मिल गया।

द्वितीय दैत्य-पुरुष—अरे, भाई! सम्राट् ही नहीं,—वर्षों से पद-दलित दानवों का विजय-गौरव ही आ गया। अब स्वर्ग दानवो के आयत्त में समझ लो मित्र!

प्रथम दैत्य-पुरुष—तभी तो आज तक मैंने विवाह नहीं किया।

द्वितीय दैत्य-पुरुष—अभिप्राय?

प्रथम दैत्य-पुरुष—अति सरल। यही कि एक सुन्दरी देव-कन्या के कोमल हाथों से अपने गले में माला पहनने की प्रबल प्रतीक्षा।

द्वितीय दैत्य-पुरुष—तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि मैं घाटे में रहा।

प्रथम दैत्य-पुरुष—घाटे की क्या बात है। एक और सही। चलो, हम लोग अपने शिशु-सम्राट् से अपनी-अपनी कामना सुरक्षित करा लें। (दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

दैत्यपुरी का राज-भवन

[एक झूले में दैत्य-शिशु खेल रहा है। माता महिषी और दानवी झूले की दोनों ओर हर्षित खड़ी हैं। आम्र-शाखायुक्त कलश लिये दैत्य-कन्याओं एवं झूलों का गुच्छा लिये दैत्य-पुरुषों का प्रवेश। शिशु का दुलार एवं मुख-चुम्बन। दैत्य-पुरुषों तथा दैत्य-कन्याओं का सम्मिलित हर्षजनक गीत-नृत्य]

एक औरत— अपने राजे पर बलि-बलि जाएँ !
सभी औरत— अपने·····।
एक औरत— आसमान की थाली होगी
सूरज होगा दीप हमारा,
आँखें भर-भर जग देखेगा
चमकेगा मुन्ने का मुखड़ा !
अपने हीरे पर·····
अपने राजे पर बलि-बलि जाएँ !
(शिशु को प्यार करती हुई)
सभी— अपने राजे ·····॥
एक आदमी— शोणित से कर इनका टीका
जग कर पाए बाल न बाँका,
नभ से धरती तक लहराए
लाल रंग की विजय-पताका
अपने नेता पर·····
अपने राजे पर बलि-बलि जाएँ।
(शिशु को प्यार करता हुआ)

सभी— अपने राजे ..... ॥

दूसरी औरत—जी, कुछ तो मेरी भी सुन लो !
इस झोली में तारे भर दो !
जग में हो जाए उजियाला
इस धरती पर चंदा धर दो !
अपने नन्हें पर .....
अपने राजे पर बलि-बलि जाएँ ।

(शिशु को प्यार करती हुई)

सभी— अपने राजे ..... ॥

दूसरा आदमी—बड़े प्यार से सबकी सुनना
हाँ, जी हमको भूल न जाना
आशा में हम भी बैठे हैं
पूरा करना सबका सपना !
अपनी आशा पर .....
अपने राजे पर बलि-बलि जाएँ !

(शिशु को प्यार करते हुए)

सभी— अपने राजे ..... ॥

[गीत-नृत्य समाप्त होते ही सेनापति चिचुर का प्रवेश]

चिचुर—(झूले के पास जाकर तलवार मस्तक तक ले जाते हुए घुटने टेककर) *शिशु-सम्राट् ! सेनापति चिचुर का अभिवादन स्वीकार हो !*

[बच्चा किलकारी मारता है]

महिषी—*उठो, सेनापति ! तुम्हारे सम्राट् ने अभिवादन स्वीकार कर लिया ।*

[सब हँसने लगते हैं]

चिक्षुर—(उठकर खड़े होते हुए) *हमारे सम्राट् का नाम क्या रखा गया ?*

महिषी—*तुम्हीं बताओ न !*

दानवी—*नाम तो मैं रखूँगी। मैंने सोच भी रखा है, और ऐसा नाम जो इसके लिए बिलकुल उपयुक्त है।*

चिक्षुर—*वह क्या ?*

दानवी—*पहले मुँह मीठे की प्रतिश्रुति दीजिए !*

चिक्षुर—*तथास्तु।*

दानवी—*माता महिषी का पुत्र 'महिषासुर'।*

चिक्षुर—*सुन्दर !* (तलवार ऊपर उठाते हुए)

'दानव-सम्राट् महिषासुर की·····

सभी लोग—(एक स्वर से) *'जय !'*

[पट-परिवर्तन]

तृतीय दृश्य

स्वर्गपुरी

[स्वर्गपुरी में 'महिषी' के पुत्र-जन्म से भयंकर कोलाहल। कोई इधर भागता है, कोई उधर भागता है। सबके मुख पर मलिनता एवं महिषी के पुत्र-जन्म का संवाद।]

एक देव-पुरुष—(घबराए हुए स्वर में) *महिषी के पुत्र-जन्म !*

[एक ओर से भागकर आता है और दूसरी ओर निकल जाता है। उसी ओर से एक और देव-पुरुष का घबराए हुए प्रवेश]

दूसरा देव-पुरुष—*अनर्थ ! भयंकर अनर्थ !! महिषी के पुत्र-जन्म !!!*

[द्रुतगति से प्रस्थान। दोनों ओर से दो देव-कन्याओं का चंचल-गति से प्रवेश]

प्रथम देव-कन्या—*सुना तुमने ?*

द्वितीय देव-कन्या—(निराशा के स्वर में) *हाँ, दानव-कुल का सूर्योदय ! महिषी के पुत्र-जन्म !!*

[दोनों का प्रस्थान। देवराज इन्द्र का निराशाजनक चेहरा लिये दोनों कानों पर अँगुली धरे प्रवेश। पीछे-पीछे शची आती है।]

इन्द्र—(विक्षिप्त भाव से) *दानव-कुल के सूर्य का उदय !—महिषी के पुत्र-जन्म !!*—(स्वर में कुछ परिवर्तन लाते हुए शची की ओर मुँह करके) *सुना, सुना तुमने ? दानव-कुल का सूर्योदय ! और साथ ही स्वर्गाधिपति देवराज इन्द्र के भाग्य का सूर्यास्त।*

शची—(इन्द्र के मुख पर हाथ धरती हुई) *नहीं, नहीं, ऐसा न कहिए प्रभो !*

इन्द्र—(निराशाजनक स्वर में) *यह तो होना ही था शची !*

(तुरंत स्वर में कुछ परिवर्तन लाते हुए) अग्निदेव ! अग्निदेव !! तुमने यह क्या वरदान दे दिया। देव-दैत्यजयी ! स्वर्गपुरी का तुमने कुछ भी ध्यान नहीं किया। देव-बालक और देव-बालाओं के क्रन्दन से क्या तुम्हारा हृदय नहीं पसीज उठेगा अग्निदेव ! यह क्या किया ? यह क्या किया, देव-पुरुष ?? (पुनः स्वर में परिवर्तन लाते हुए) दैत्यपुरी में खुशियाँ मनाई जा रही हैं। इन्द्र की असफलता पर खुशियाँ !—(विकट हँसी) हः—हः—हः—हः !

शची—जो होना था वह होकर ही रहा। इसके लिए चिन्तातुर होने से क्या लाभ स्वामी ?

इन्द्र—जो-कुछ होना था, वह होकर ही रहा। और जो-कुछ होने वाला है वह भी होकर ही रहेगा पौलोमी ! उसी होने वाली बात की एक-मात्र कल्पना मुझे चिन्तातुर कर रही है। हवा दैत्यपुरी से वही अशुभ सूचना ला रही है। (अर्द्ध उन्मत्त भाव से) बंद करो ! बंद करो द्वार ! बद करो वातायन, इन्द्राणी !!

शची—(सान्त्वना के स्वर में) विचलित न होइए नाथ ! देव-गुरु ने क्या मार्ग बताया ?

इन्द्र—अभी अपेक्षा करो !

शची—अपेक्षा करो ? कब तक ??

इन्द्र—यह नहीं बताया। (एक क्षण ठहरकर) समय आने पर।

शची—स्वर्गपुरी में जब आँधी प्रवेश कर जायगी ?

[कार्तिकेय का प्रवेश]

कार्तिकेय—उससे पहले देवरानी ! देवगुरु को इसकी चिन्ता हर समय सता रही है।

इन्द्र—इन्द्र से भी अधिक ?

कार्तिकेय—स्वर्ग के प्रत्येक देवता के लिए यह चिन्ता का विषय बना हुआ है राजेन्द्र !

शची—फिर भी उपाय में इतना विलम्ब ?

इन्द्र—भाग्य का निपीड़न, देवि !

कार्तिकेय—देव-सम्राट् के मुख से निकला हुआ निराशा का यह शब्द समग्र देव-जाति को भीषण नैराश्य के अंधकार में डाल देगा देवराज ! देव-शक्ति अभी इतनी कुण्ठित नहीं हो गई। दानवों की विजय क्षण-भंगुर है।

इन्द्र—इस बार मैं स्पष्ट देख रहा हूँ स्कन्द ! दानवों की रक्त-ध्वजा यहाँ फहरेगी।

कार्तिकेय—(आश्चर्य से) वृत्रासुर, नमुचि, शम्बर, अहि विश्वत्रास-जैसे दैत्यों के संहारक ! यह क्या कह रहे हैं ?

इन्द्र—इन्द्र सही कह रहा है कार्तिकेय ! यह दानव कोई साधारण दानव नहीं है। रंभासुर का पुत्र महिषासुर। और उस महिषासुर की नस-नस में भरी जा रही है माता महिषी के दुग्ध के द्वारा प्रतिशोध की भीषण-ज्वाला।

शची—(उपहास के स्वर में) देवेन्द्र के वज्र के आगे उस ज्वाला का मूल्य ही क्या है !

इन्द्र—मूल्य ?—मातृभूमि की स्वतन्त्रता का हरण। स्वर्गपुरी की इस सुख-समृद्धि का निकट भविष्य में अंत।

कार्तिकेय—हो सकता है। किन्तु; चिरकाल के लिए नहीं,

शची—कुछ काल के लिए ही सही, किन्तु देवताओं के आभिजात्य गौरव पर क्या यह आघात नहीं है ?

कार्तिकेय—आभिजात्य गौरव का विसर्जन तो देवताओं ने कभी नहीं किया, देवि !

इन्द्र—स्वर्गलोक में विजातीय का प्रवेश क्या हमारे आभिजात्य गौरव को क्षुण्ण नहीं करता कार्तिकेय ?

कार्तिकेय—भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है इसकी चिन्ता में वर्तमान का सौध गिरा देना युक्ति-संगत तो नहीं है सम्राट !

इन्द्र—तो असुरों का स्वर्गाक्रमण तुम निश्चित नहीं मानते ?

कार्तिकेय—निश्चित-अनिश्चित के निर्णय में न पड़कर देव-सेना के समुचित संगठन की ओर ध्यान देना अधिक श्रेयस्कर है, देवराज ! आप इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर दें तो अधिक सुफल की सम्भावना है।

शची—इस विषय में गुरुदेव की इच्छा जानना भी तो आवश्यक है। संकट-काल में उनके परामर्श के बिना कोई भी पग उठाना विघ्न से बाहर नहीं है।

कार्तिकेय—देव-सेना के उचित संगठन पर गुरुदेव सहमत हैं देवरानी !

इन्द्र—गुरुदेव इस समय कहाँ होंगे कार्तिकेय ?

कार्तिकेय—कुछ देर पूव मुझे मार्ग में मिले थे। कुछ दिन महर्षि कात्यायन के आश्रम में रहने का विचार प्रकट किया था।

इन्द्र—महर्षि कात्यायन के आश्रम में ? (एक साथ आश्चर्य और जिज्ञासा का भाव।)

कार्तिकेय—हाँ, सम्राट् ! मैं तो यह समझ रहा हूँ कि महर्षि के साथ उचित विचार-परामर्श के लिए ही गुरुदेव वहाँ गए हैं।

इन्द्र—सम्भव है।

शची—हम लोगों की सुख-शांति के लिए एक संन्यासी पुरुष को कितनी चिन्ता है नाथ !

कार्तिकेय—संन्यासियों का जीवन तो औरों के लिए ही उत्सर्ग है देवरानी ! तभी तो वे देवगुरु हैं। (इन्द्र की ओर संकेत करते हुए) आइए, देवराज ! गुरुदेव के लौटते तक हम सैन्य-संगठन की ओर ध्यान दें।

इन्द्र—क्यों षडानन ! दैत्यपुरी में हमारा गुप्तचर भी तो होना चाहिए ?

कार्तिकेय—इसका मैंने पहले ही प्रबन्ध कर लिया है।

इन्द्र—तो चलो देव-सेनापति! भाग्य-लक्ष्मी की पूजा में हम सब एक होकर जुट जायँ।

(प्रस्थानोद्यत)

[पट-परिवर्तन]

चतुर्थ दृश्य

उन्मुक्त स्थान

[कुम्भासुर, दम्भासुर और मित्रासुर नाम के तीन दैत्य-पुरुषों का प्रवेश ।]

कुम्भासुर—*सुना है, स्वर्ग-लोक में युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं ?*

मित्रासुर—*सुनने में तो ऐसा ही आया है ।*

दम्भासुर—*आओ, फिर हम लोग भी युद्ध की तैयारियाँ करें ।*

कुम्भासुर—*किधर से ?*

दम्भासुर—*जिधर से तुम्हारी इच्छा । हम तो सब ओर से तैयार हैं ।*

मित्रासुर—*तो मुष्टि-युद्ध से ही शुरू करो !*

कुम्भासुर—*स्वीकार ।*

मित्रासुर—*देखो, युद्ध के कुछ नियम होते हैं ।*

दम्भासुर—*युद्ध में नियम-संयम कहाँ ! मारो और काटो यही तो जानता हूँ ।*

मित्रासुर—*मुष्टि-युद्ध में ऐसा नहीं होता ।*

कुम्भासुर—*अच्छा, भाई पहले इसे बता लेने दो !*

दम्भासुर—*चलो, यही सही ।*

मित्रासुर—*पहले तो 'शुरू' कहते ही युद्ध शुरू, फिर 'बंद' कहते ही युद्ध बंद ।*

दम्भासुर—*ठहरो, पहले इसी पर अभ्यास कर लेने दो ! आओ, कुम्भासुर ! मैं तुम्हें ललकारता हूँ ।* (बाँह सँभालने लगता है ।)

कुम्भासुर—(यह भी बाँह सँभालते हुए) *दम्भासुर, सावधान !* (और अपने ही आप 'युद्ध शुरू' कहते हुए धड़ाम से उसकी नाक पर

एक मुक्का जनाते हुए 'युद्ध बंद' कहकर दोनों हाथ ऊपर उठा देता है)

दम्भासुर—(अपनी नाक सहलाते हुए) *यह अन्याय है !*

कुम्भासुर—*मैंने तो नियम का पालन किया ।*

मित्रासुर—*नहीं, नहीं, ऐसा नहीं । जब मैं कहूँ ।*

कुम्भासुर—*उत्तम ।*

[कुम्भासुर और दम्भासुर अपनी-अपनी तैयारी करने लगते हैं]

मित्रासुर—शुरू—

[कहने के साथ ही दोनों ने मित्रासुर पर ही हमला शुरू कर दिया । वह बेचारा घबराकर 'बंद' की आवाज लगाता है दोनों रुक जाते हैं ।]

मित्रासुर—*अरे, यह क्या कर रहे हो ?*

कुम्भासुर—*नियम-पालन ।*

दम्भासुर—*मैं तो इन्द्र की नाक समझ बैठा था ।*

मित्रासुर—*ऐसा नहीं ।*

दम्भासुर—*फिर कैसा ?*

मित्रासुर—*तुम लोग आपस में ।*

दम्भासुर—*हम लोग आपस में ! अच्छा ।*

कुम्भासुर—*और कोई नियम हो तो अभी बता दो !*

मित्रासुर—*हाँ, लड़ते-लड़ते अगर कोई गिर जाय तो उस पर तब तक कोई आक्रमण न करे, जब तक वह उठ नहीं जाता ।*

दम्भासुर—*ठीक है । चलो, कुम्भ ! तैयार हो जाओ !*

कुम्भासुर—*मेरा रक्त खौल रहा है ।*

मित्रासुर—शुरू ।

[कुम्भासुर और दम्भासुर दोनों आपस में गुत्थम-गुत्था करते हुए लेट जाते हैं । दोनों का सिर दो ओर—पाँव आपस में मिल रहे हैं । एक कुछ उठकर दूसरे को उठा हुआ देखने लगता है । दूसरा भी ऐसा ही करता है । कुछ क्षण उनका यही तमाशा रहता है । फिर लेटे-

ही-लेटे दोनों अपने अपने सिर को एक ही जगह ले आते हैं और फिर धीरे-धीरे विपरीत दिशा की ओर मुँह किये उठ खड़े होते हैं। दोनों एक दूसरे को गरदन टेढ़ी करके देखने लगते हैं। किन्तु कोई किसी पर आक्रमण नहीं करता। यह देखकर मित्रासुर 'युद्ध बंद' का आदेश देता है।]

मित्रासुर—'युद्ध बंद'।

[कुम्भासुर एवं दम्भासुर अपने-अपने कपड़े झाड़ते हुए आमने-सामने खड़े हो जाते हैं।]

दम्भासुर—*तुम्हारा नियम ठीक नहीं।*

कुम्भासुर—*यह तो स्त्रियों की लड़ाई है। इसमें हमें आनंद नहीं आता। हमें तो गरदन चाहिए।*

दम्भासुर—*कुम्भ! आज तू मेरे हाथों बच गया।*

कुम्भासुर—*अरे दम्भ! मैंने तुझे छोड़ दिया, नहीं तो तेरी नाक मेरी हथेली पर थिरकती होती।*

[आपस में जूझने को उद्यत होते हैं। किन्तु मित्रासुर बीच में पड़कर छुड़ा देता है। इतने में एक दैत्य का घोड़ा लिये प्रवेश। घोड़े वाला एक ओर से प्रवेश कर दूसरी ओर को जाने लगता है।]

दम्भासुर—*ऐ, तुम कौन हो?*—

[आवाज सुनकर घोड़े वाला रुक जाता है। दम्भासुर और कुम्भासुर आगे-आगे घोड़े के पास आते हैं। मित्रासुर पीछे-पीछे।]

घोड़े वाला—*आपका सेवक।*

कुम्भासुर—*यह कौन है?* (घोड़े की ओर अंगुलि उठाकर पूछता है।)

घोड़े वाला—*घोड़ा।*

[दम्भासुर कुछ आगे आकर घोड़े के मुँह की ओर संकेत करके पूछता है।]

दम्भासुर—*यह क्या है?*

घोड़े वाला—मुँह।

दम्भासुर—(आँख की ओर अंगुलि दिखाकर) यह ?

घोड़े वाला—आँख।

दम्भासुर—(पीठ की ओर इशारा करके) यह ?

घोड़े वाला—पीठ।

दम्भासुर—(नीचे पेट की तरफ संकेत करके) यह ?

घोड़े वाला—पेट।

दम्भासुर—(पाँव की ओर उँगली करके) ये ?

घोड़े वाला—पाँव।

दम्भासुर—(फिर पूँछ को अपने हाथ से कुछ उठाते हुए) और यह ?

घोड़े वाला—पूँछ।

दम्भासुर—(कुछ बिगड़कर) फिर घोड़ा कहाँ है ? यह मुँह यह आँख, यह पेट, यह पीठ, यह पाँव, यह पूँछ—फिर घोड़ा किधर से हुआ ? तुम झूठ बोलते हो!

कुम्भासुर—दैत्यपुरी में झूठ !—इसकी गरदन उतार लो ! (मारने को उद्यत होता है)

मित्रासुर—(रोकते हुए) अरे, नहीं भाई ! इसे छोड़ दो। आँख, मुँह, पाँव, पूँछ सब मिलाकर घोड़ा।

दम्भासुर—(घोड़े वाले की तरफ अंगुलि करते हुए) इसको भी मिलाकर घोड़ा ?

[घोड़े की लगाम थामे घोड़े वाला सिर की तरफ खड़ा रहता है। इतने में घोड़ा हिनहिनाता है। तीनों ही चौंककर पीछे खिसक जाते हैं।

दंभासुर—ऐ ! यह क्या कहता है ?

घोड़े वाला—आप लोगों की 'जय' करता है।

दम्भासुर—हमारी या (कुम्भासुर की ओर इशारा करके) इसकी !

घोड़ वाला—(जान छुड़ाने के खयाल से) आप दोनों की।

कुम्भासुर—हम (दम्भ की ओर मुँह करके) इसके साथ नहीं रहेंगे। हमें घोड़े का हिस्सा कर दो।

दम्भासुर—हम मुँह की तरफ लेंगे।

कुम्भासुर—चलो, मान लिया। (घोड़े वाले को संबोधित करके) ऐ! दोनों को बीच से बराबर बाँट दो!

घोड़े वाला—प्रभु! इस तरह तो घोड़ा मर जायगा।

कुम्भासुर—पहले मरेगा या बाद में?

घोड़े वाला—बाँटते ही मर जायगा।

कुम्भासुर—फिर हम क्या करें, हमें तो हिस्सा चाहिए।

मित्रासुर—ऐसा करो, कि तुम (कुम्भ की ओर इशारा करके) पीछे की ओर मुँह करके बैठ जाओ! और यह (दंभ की ओर इशारा करके) आगे की ओर मुँह करके बैठे। बस, झगड़ा समाप्त।

कुम्भासुर—हमारी ओर लगाम नहीं है।

मित्रासुर—घोड़े वाले की पगड़ी लेकर उसकी बना लो!

[कहने के साथ ही कुम्भासुर घोड़े वाले के सिर से पगड़ी लेकर घोड़े की पीठ पर सवार हो जाता है और दुम में फँसाकर लगाम बना लेता है। इतने में दम्भासुर भी आगे की तरफ मुँह करके सवार हो जाता है और लगाम पकड़कर घोड़ा हाँकने लगता है। कुम्भासुर पगड़ी की लगाम हिलाते हुए घोड़े को पीछे की ओर जाने के लिए कहता है।]

कुम्भासुर—ऐ! घोड़े, इधर चल! तिक्-तिक्! तिक्-तिक्!

(पर घोड़ा तो आगे की तरफ ही चलता है।)

[पट-परिवर्तन]

पंचम दृश्य

दैत्यपुरी का एक भाग

[पर्दा उठने के साथ ही नेपथ्य में शोर के मचने की आवाज और साथ ही एक स्त्री की करुण पुकार ।]

बचाओ ! बचाओ !

[इतने में खड्ग लेकर दौड़ते हुए किशोर—महिषासुर—का प्रवेश ।]

महिषासुर—(आश्चर्यजनक मुद्रा में) *कौन ! यह तो किसी स्त्री की करुण पुकार मालूम पड़ती है । (स्वर में कुछ उच्चता लाते हुए) डरो नहीं ! डरो नहीं ! मैं आ रहा हूँ ।*

[दूसरी ओर को दौड़ता हुआ प्रस्थान]

(पुनः नेपथ्य से आवाज) *खड्ग रोको, महिष !* (नेपथ्य से महिषासुर की आवाज) *कौन ? बहन दानवी !*

[एक ओर से दानवी और महिषासुर का प्रवेश । दूसरी ओर से प्रसन्न वदना माता महिषी का]

दानवी—*हाँ, महिषी ! मैं ही हूँ । माया-बल से मैंने ही शेरनी का रूप धारण करके तुम्हारी निडरता की परीक्षा लेनी चाही ।*

महिषासुर—*ओह ! मेरी निडरता की ?* (हँसता है) *सिर्फ इतने से ही ! बहन, भयंकर प्रलय की गर्जना से भी महिषासुर त्रस्त होने वाला नहीं ।*

महिषी—*यही देखना था पुत्र ! तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो, आज जिस प्रकार एक रमणी की करुण पुकार सुनकर तुम मृत्यु के मुँह में दौड़ पड़े, मुझे आशा है भविष्य में ठीक इसी तरह अपनी समस्त प्रजाओं की रक्षा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करते हुए भी तुम*

नहीं हिचकोगे। तुम्हारे साहस पर मुझे गर्व है।

दानवी—माता महिषी की देख-रेख में जिसको अस्त्र-विद्या और रण-नीति सिखाई जा रही हो, वह समस्त संसार से भी एक दिन टक्कर लेने वाला होगा, इसमें संदेह ही क्या है!

महिषी—दानवी, मैं चाहती हूँ मेरा महिष त्रिभुवन-विजयी हो,

दानवी—ऐसी ही होगा माता!

महिषी—अस्त्र-विद्या में पारंगत करने के बाद इसे मैं माया-विद्या की शिक्षा देना चाहती हूँ। इसमें तुम्हारा भी सहयोग चाहिए दानवी!

दानवी—दैत्यपुरी में ही नहीं, समस्त त्रिभुवन में माया-विद्या में जिसकी ख्याति है उस माता महिषी के रहते दानवी क्या शिक्षा दे सकती है! आखिर मेरी विद्या तो आपकी ही सिखाई हुई है!

महिषी—यह बात नहीं है, दानवी! शिक्षा तो मैं ही दूँगी। तुम्हारे सहयोग से कार्य शीघ्र और कुशलता से होगा।

दानवी—दानवी सब समय प्रस्तुत है माता!

[पट-परिवर्तन]

षष्ठ दृश्य

तपोवन

[महर्षि कात्यायन और देवगुरु बृहस्पति दोनों गम्भीर विचार-विनिमय की मुद्रा में निमग्न दिखाई पड़ते हैं।]

बृहस्पति—आचार्य देवराज इन्द्र के द्वारा भूलवश जो अधर्म एवं अन्याय हो गया, उसका प्रतिकार तो सोचना ही होगा।

कात्यायन—इसका कोई शीघ्र प्रतिकार तो कठिन है देवगुरु ! भाग्य की गति कर्म के अधीन है। कर्म के द्वारा ही भाग्य बिगड़ता और बनता है। उसमें देवता हो या दानव, किन्नर हो या मानव, योगी हो या संसारी, किसी की भी छूट नहीं। सभी कर्म के द्वारा बँधे हैं। आपने जो कुछ बताया उससे तो यही देख रहा हूँ बन्धु, कि देवेन्द्र के व्यवहार से आज धर्म क्षुब्ध है, भाग्य विमुख है।

बृहस्पति—उचित कह रहे हैं ऋषि ! किन्तु, धर्म में प्रायश्चित्त और कर्म में प्रतिकार का भी तो विधान है।

कात्यायन—देवेन्द्र का क्षणिक उन्माद-जनक कर्म ही देवताओं की भाग्य-लक्ष्मी के विमुख होने का एक-मात्र कारण नहीं है देवगुरु ! आज भी स्वर्ग में देवताओं का आचरण कितना मद-युक्त और विलासमय है, क्या आप नहीं देख रहे हैं ? देव-नर्तकियों के गीत नृत्य और सोम-पान में ही देवगण आज डूबे हुए हैं। देव-भाग्य का उदय अवश्य हुआ, किन्तु, देव आचरण उसे चिर स्थिर नहीं रख सकेगा। बन्धु, जो कुछ होता है, होने दीजिए ! जो एक दिन ऊँचे उठता है, वह तो एक दिन गिरेगा ही।

बृहस्पति—उनकी नींद खुल रही है ऋषिवर ! अपने आगे शिशु की तरह वे अबोध हैं। उनकी भूल मार्जन कीजिए तपस्वी ! ऋषि

और ब्राह्मणों की पूजा के मंत्र से ही आज संसार में देवगण पूजित हैं। ऋषि और ब्राह्मणों के यज्ञ-भाग से ही उनका कलेवर पुष्ट होता है। ऋषि और ब्राह्मणों की संयुक्त शक्ति देवताओं की रूठी हुई भाग्य-देवी को पुनः लौटा भी सकती है। उन अबोध शिशुओं को क्षमा करें, बन्धु!

कात्यायन—क्षमा से भाग्य-लिपि तो नहीं पलटी जा सकती देवगुरु!

बृहस्पति—सही है ऋषिवर! किन्तु संतान को पिता के विशाल उन्मुक्त हृदय की स्नेह-छाया तो मिल जायगी!

कात्यायन—धन्य हैं, देवगुरु! आपने मेरे अन्तःकरण पर विजय प्राप्त कर कर ली। आपकी सहनशीलता एवं नम्रता संसार में चिरदिन उज्ज्वल रहेगी। **समग्र देवजाति** का अपराध अपने ऊपर लेने वाले महान् तपस्वी, आप धन्य हैं, आपका उन्नत पद देवताओं के लिए भी दुर्लभ है अभिशाप पीकर वरदान देने वाले हे महान्! मेरा नमस्कार स्वीकार हो। **(दोनों हाथ जोड़कर मस्तक को झुकाते हैं।)**

बृहस्पति—**(प्रति नमस्कार करते हुए)** देवगुरु अवश्य हूँ, किन्तु आप-जैसे महर्षियों के आगे यह पद कितना तुच्छ है। आपके उदार अन्तःकरण ने अबोध देव-संतानों को क्षमा कर दिया, यही क्या मेरे लिए कम खुशी की बात है। महर्षियों ने ही संसार में देव-ख्याति को प्रचारित किया। देवताओं की भाग्य-लक्ष्मी आज रुष्ट होने पर भी महर्षियों का मस्तिष्क पुनः उसे लौटा सकता है। आइए, बंधुवर! हम किसी परिणाम पर पहुँचे।

कात्यायन—एक मस्तिष्क से नहीं—सम्मिलित शक्ति से।

[दोनों हँसने लगते हैं]

कात्यायन—आपने क्या सोचा है?

बृहस्पति—विशेष कुछ नहीं। हाँ, आने से पूर्व देव-सेनापति

कार्तिकेय को देव-सेना के संगठन के लिए संकेत अवश्य कर आया हूँ।

कात्यायन—यह उचित ही है। असुरों का स्वर्गाक्रमण एक प्रकार से निश्चित ही समझना चाहिए। चाहे आज हो, या कुछ दिन बाद! असुरों के हृदय से प्रतिशोध की भावना नहीं जा सकती। (कुछ क्षण रुककर) हाँ, देवगुरु! सैन्य-संगठन के साथ-साथ देव-माता अदिति से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वे कठोर-तपस्या से भगवान् विष्णु को प्रसन्न करें और उनसे अपनी देव-संतानों पर पड़ी हुई अमंगल की छाया को दूर करने का वर लें।

बृहस्पति—उत्तम विचार है।

कात्यायन—यही नहीं एक काम और!—कुछ देवताओं को छद्म रूप से दैत्य-सेना में जा मिलना चाहिए। दैत्यों का सैन्य-संचालन अद्भुत है, छद्मवेषी देवता सभी बातों का बता लेते रहें, दैत्यपुरी मे गुप्तचर भेजने की व्यवस्था तो मेरे विचार से देवराज ने कर ली होगी। आप यहाँ से जाकर देवताओं को विलास-प्रियता की ओर से हटाकर आसन्न विपत्ति के लिए प्रस्तुत करें, उपस्थित इतना ही, बाकी समय का गति को देखकर।

बृहस्पति—तो पहले इन विचारों को कार्य रूप दिया जाय, (हाथ जोड़कर) आज्ञा हो महर्षि!

[दोनों उठ खड़े होते हैं। प्रत्युत्तर में महर्षि कात्यायन भी हाथ जोड़ते हैं।]

कात्यायन—भगवान् मंगल करें।

[यवनिका]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

पुष्प-वाटिका

[एक ऐसी पुष्प-भरित लता को, जो एक वृक्ष से लिपटी हुई है, दानवी अपने कोमल प्यार भरे हाथों से स्पर्श करती हुई गुनगुनाती है ।]

दानवी— "नील गगन में पक्षि-युगल का
मैंने उड़ना देखा है ।"

(गुनगुनाना बंद करके आप-ही-आप)

लता को आश्रय चाहिए। तभी तो अपने बाहु फैलाकर वृक्ष को आलिंगन-पाश में बाँध लिया। वृक्ष में भी नवजीवन आ गया। वह मुस्करा उठा। कोमलता एवं कठोरता का अपूर्व सम्मिश्रण। जीवन इसी का नाम है। नारी ऊपर से कितनी ही कठोर क्यों न हो, उसके अन्तस्तल में कोमलता की जाह्नवी कभी सूख नहीं सकती। दानवी कठोर है, दैत्य-कुल में उत्पन्न हुई है; किन्तु फिर भी वह नारी है। एक नारी की कोमल भावनाएँ उसमें भी अँगड़ाई लेती हैं। (लता में खिले हुए फूलों को स्पर्श करती हुई) *ये फूल—लता के जीवन की कोमल कल्पनाओं के साकार रूप हैं। नारी भी तो यही चाहती है।*

यौवन—जीवन का मध्याह्न काल है, पूर्णिमा की रात्रि है, हृदय-समुद्र से ऊँची-ऊँची लहरें उठ-उठकर चन्द्रमा को आमन्त्रण देती हैं। सौन्दर्य और सुगन्ध बिखेरकर कली भ्रमर को आह्वान करती है। प्रकृति की यह शाश्वत धारा अटूट है। कली के लिए अलि का स्पर्श कितना सखद है !

[इतने चुप-चुप पीछे से आकर चिक्षुर अपने दोनों हाथों से दानवी की आँखों को ढक लेता है। दानवी मुस्कराने लगती है। अपने हाथों से चिक्षुर के हाथों को छूकर पहचानने का अभिनय करती हुई]

दानवी—मैं समझ गई !

चिक्षुर—कौन ?

दानवी—दुष्ट-भ्रमर।

[चिक्षुर हाथ छोड़ देता है। दोनों आमने-सामने होकर हँसने लगते हैं]

चिक्षुर—मैं तो समझ बैठा था, दानवी के पास हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं। किन्तु आज मैं चकित रह गया। दैत्य-कुल की रमणी के अंदर यह कवि-हृदय।

दानवी—(सलज्ज) मैं भी तो यह समझ बैठी थी कि योद्धा के पास प्रेम का हृदय कहाँ ! कठोरता ही जिसका धर्म हो, उसके आगे प्रणय-निवेदन कैसा ?

चिक्षुर—हिमालय तो कठोर है। मानती हो न ? गंगा की प्रणय-कहानी उसी से पूछ देखो न !

दानवी—तभी तो कभी इस चट्टान से कभी उस चट्टान से धक्के खा-खाकर चरणों में भी स्थान नहीं पाती और बेचारी को जगह-जगह की ठोकरें खाकर दूर नीचे समुद्र में जाकर अपना अस्तित्व ही खो बैठना पड़ता है।

चिक्षुर—भूल, प्रेयसि ! चट्टानों से धक्के नहीं खाती, बल्कि हिमालय के अंग-प्रत्यंग से लिपटती हुई प्रेमाभिनय करती है। गंगा आगे-आगे दौड़ती जाती है और हिमालय उसे पकड़ने के लिए (दानवी चिक्षुर से कुछ दूर हटती जाती है, चिक्षुर उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ता जाता है) पत्थर, कंकर तथा रेत तक बनकर नीचे धरातल में समुद्र तक दौड़ा जाता है। अंत में उसकी विजय होती

है ! (चिक्षुर कुछ क्षणों के लिए दानवी को प्रेम-पाश में बाँध लेता है) क्यों, मेरी गंगा ! ठीक कह रहा हूँ न ?

दानवी—ऊँ—हूँ—('नहीं' का सिर हिलाती है। साथ ही कुछ मुस्कुराती भी है।)

चिक्षुर—(दानवी को बाहु-पाश से मुक्त करते हुए, ठोड़ी को हाथ से ऊपर उठाकर) क्यों ?

दानवी—हिमालय के तो हृदय ही नहीं। उसके चारों ओर तो बर्फ बिखरा पड़ा है।

चिक्षुर—जमा नहीं पड़ा है। बर्फ तो उसके उन्नत मस्तक का श्वेत मुकुट है।

दानवी—और यही मुकुट का गर्व उसे जड़ बनाए हुए है।

चिक्षुर—यह भी भूल है प्रियतमे ! श्वेत-मुकुट उसके हृदय की स्वच्छता का प्रमाण है, गर्व या जड़ता का नहीं।

दानवी—श्वेत रंग पर क्या विश्वास ! उस पर तो किसी भी रंग का प्रभाव पड़ सकता है।

चिक्षुर—सही है। किंतु किसी अन्य रंग को मिटाने के लिए श्वेत रंग की ही आवश्यकता पड़ती है। और जानती हो दानवी, श्वेत रंग पर कौन सा रंग अधिक खिलता है ?

दानवी—(प्रेमाभिनय से) कौन सा ?

चिक्षुर—वही,—जो प्रेम का रंग है।

दानवी—वह क्या ?

चिक्षुर—जो मेरी प्रेयसि के अंगों का रंग है। जिस पर सूर्य की पहली किरण भी न्योछावर है।

[दानवी कुछ शरमा जाती है। चिक्षुर उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर उसी वृक्ष के नीचे, जिस पर लता लिपटी हुई है और जिसके नीचे हरी-हरी घासों से युक्त एक ऊँची-सी जगह बनी है,

उस पर जाकर बैठ जाते हैं। फिर चिचुर अपने बाएँ हाथ के बल और दानवी अपने दाएँ हाथ के बल पर एक दूसरे के करीब आमने-सामने आधे लेट से जाते हैं। दानवी नीचे से एक तृण उठाकर थोड़ा भाग दाँतों के नीचे रख लेती है।]

चिचुर—*मेरी गंगा आज अपने हिमालय को एक गाना सुनायगी।*

दानवी—(दाँतों के नीचे से तृण को हटाती हुई) *कौन सा ?*

चिचुर—*अभी-अभी जो गुनगुना रही थी।*

[दानवी गाने लगती है]

दानवी—

मैंने इक सपना देखा है !
नयनों में हँसता प्यार लिये
अपने पंखों पर भार दिये
नील गगन में युगल पंछियों का मैंने उड़ना देखा है !
मैंने इक..... !!

जब वायु चला मधुहास लिये
प्रात हुआ नव संदेश लिये
एक डाल पर दो फूलों का साथ-साथ खिलना देखा है !
मैंने इक..... !!

आई संध्या की जब बेला
बंद हुआ धरती का मेला
आसमान में दो तारों का साथ-साथ उगना देखा है !
मैंने इक..... !!

प्यार भरी कुटिया में झाँका
सुख का मूल्य सही में आँका

एक ज्योति से दो दीपों का साथ-साथ जलना देखा है !
मैंने इक ..... !!

[एकाएक गीत रुक जाता है]

चिचुर—जैसे मालूम पड़ा सारा विश्व ही रुक गया। जी चाहता है दानवी, तुम्हारे मधुर गीतो की स्वर-लहरियाँ कभी बंद न हों। ये उठ-उठकर मेरी कल्पनाओं को छेड़ा करें और मैं इनका खेल देखता रहूँ। संगीत पाषाण को भी मुग्ध कर लेता है।

दानवी—तो अपने मुँह से आज यह मान गए कि तुम पाषाण हो !

चिचुर—(दानवी की ठोढ़ी पकड़ते हुए) वज्र के आगे पाषाण की कठोरता का मूल्य ही क्या है ?

दानवी—लता से लिपटे हुए इस वृक्ष के नीचे—

चिचुर—(बात काटकर) मिलते हुए वर्षों हो गए।

दानवी—नहीं, इसी तरह हम मिलते रहें और प्रणय-कहानी को स्मृति छोड़ते जायँ !

चिचुर—यह वृक्ष, यह लता, यह छाया, यह शीतलता सभी तो यह कह रहे हैं कि—'ऐ प्रेमी-प्रेमिकाओ, अब तुम सामाजिक बंधना में बँध जाओ !

दानवी—भूल, सुन रहे हो ! ये सभी कह रहे हैं—'प्रेम की तीव्रता को इसी तरह जीवित रखो ! मिलन की चाह और प्रतीक्षा प्रेम-धार के दो तट हैं। इनके बीच अपनी नौका खेते चलो !'

चिचुर—तो क्या हमारा किसी दिन भी गन्तव्य-स्थान नहीं आयगा ?

दानवी—गन्तव्य-स्थान आने का अर्थ स्थिति में नया परिवर्तन है।

चिचुर—क्या तुम परिवर्तन पसंद नहीं करतीं ? इस लता को

देखो, क्या सभी ऋतु में यह एक-जैसी रहती हैं ? परिवर्तन जीवन का दूसरा नाम है। एकरसता तो जीवन के लिए मृत्यु का संदेश है।

दानवी—हृदय से मैं इस बात को मानती हूँ प्रियतम !—किंतु·····(दानवी रुक जाती है)

चिक्षुर—किंतु ?—

दानवी—मेरी प्रतिज्ञा।

चिक्षुर—तुम्हारी प्रतिज्ञा ? कैसी प्रतिज्ञा ??

दानवी—हाँ, मेरी प्रतिज्ञा—जो मैं भूले से ही कहो-कर बैठी हूँ। बहुत बड़ी ! किंतु तुम यह जानते हो कि दानव-कुल की रमणी जब एक बार प्रतिज्ञा कर लेती है तब उस पर वह अटल रहती है। हो सकता है उसके लिए उसे जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु भी छोड़नी पड़े—फिर भी प्रतिज्ञा पर वह अविचलित रहती है।

चिक्षुर—ऐसी कौन सी प्रतिज्ञा है देवि ! जिसे आज तक तुमने मुझसे नहीं कहा ?

दानवी—पिता की मृत्यु का प्रतिशोध !

चिक्षुर—किससे ?

दानवी—जिसने मेरे पिता की हत्या की।

चिक्षुर—इन्द्र ?

दानवी—हाँ, वही। मैं उसे बंदी रूप में अपने सम्मुख देखना चाहती हूँ।

चिक्षुर—इसका अर्थ स्वर्ग-विजय है।

दानवी—जो भी हो ! तभी तो मैंने कहा, मेरी प्रतिज्ञा—साधारण प्रतिज्ञा नहीं है। इसी लता, इसी वृक्ष और इसी छाया के नीचे मैंने यह प्रतिज्ञा की है।

चिक्षुर—तो मैं भी अपने पुनीत प्रेम के साक्षी—इसी लता, इसी वृक्ष और इसी छाया के नीचे खड़ा होकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक इन्द्र को बन्दी बनाकर दैत्यपुरी में नहीं लाऊँगा तब तक

अपनी प्रेयसी का अंग-स्पर्श नहीं करूँगा।

दानवी—मेरे हाथों की जय-माला उसी शुभ दिन की प्रतीक्षा करेगी;—इसी लता, इसी वृक्ष और इसी छाया के नीचे।

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

स्वर्गपुरी

[विलास भवन में एक देव-पुरुष बैठा है । आँखों में गुलाबी छाई हुई है, एक देव नर्तकी सोम-रस का पात्र भर रही है । देव-पुरुष के हाथ में पात्र देती हुई नृत्य के साथ गीत गाने लगती है ।]

नर्तकी—(गीत-नृत्य)

देखो सही, मद से भरी,
आँखें उठाकर दो घड़ी ।
आशा लिये कब से खड़ी ॥

[कुछ क्षण के लिए रुककर देव-पुरुष की ओर देखने लगती है । देव-पुरुष प्यारभरी आँखों से देखती हुई मुस्करा देती है । आँखों से आँखें मिलाकर फिर वह गाने लगती है ।]

प्रिय की सखी मैं हो गई !
अब ना छिपा मन का पता,
अब ना मुझे इतना सता ।
है ना सही सच तो बता ॥

[नर्तकी देव-पुरुष की ओर देखती है । देव-पुरुष मुस्कराते हैं ।]

प्रिय की सखी मैं हो गई !
कब से रही लूटी हुई,
माला जुड़ी टूटी हुई ।
तुमसे मिली छूटी हुई ॥

[देव-पुरुष सोम-पात्र अधर से लगाता है ।]

प्रिय की सखी मैं हो गई !

[इतने में देव गुरु बृहस्पति का प्रवेश ।]

बृहस्पति—*यह क्या कर रहे हो देव-पुरुष ?*

[अचानक देव गुरु को सम्मुख देखकर दोनों उठ खड़े होते हैं। नर्तकी और देव-पुरुष दोनों हाथ जोड़ लेते हैं।]

देव-पुरुष—(महान् आश्चर्य से) *देव गुरु ! आप !!—इस समय यहाँ !!—प्रणाम स्वीकार हो।*

[दोनों ही चरणों में झुक जाते हैं।]

बृहस्पति—(आशीर्वाद का हाथ बढ़ाते हुए) *देवताओं को यह शोभा नहीं देता !*

देव-पुरुष—*सोम-पान देवताओं के लिए निषिद्ध तो नहीं है देव गुरु ?*

बृहस्पति—*सोम-पान का यह उचित समय नहीं है।*

देव-पुरुष—*समझा नहीं, गुरुदेव !*

बृहस्पति—*स्वर्ग के वातायन से आती हुई आँधी की सूचना क्या अभी तक तुम्हें नहीं मिली ?*

देव-पुरुष—*आँधी ?—कैसी आँधी ??*

बृहस्पति—*युद्ध की आँधी !*

देव-पुरुष—*युद्ध ? किससे युद्ध ??*

बृहस्पति—*असुरों से।*

देव-पुरुष—*कारण ?*

बृहस्पति—*स्वर्ग-विजय।*

देव-पुरुष—(व्यंग से) *स्वर्ग-विजय !* (उपेक्षापूर्ण हँसी हँसता है।) *हः—हः—हः—हः* (नर्तकी को सम्बोधित करते हुए) *तुम जा सकती हो !*

[नर्तकी का हाथ जोड़े, सिर झुकाकर प्रस्थान।]

देव-पुरुष—(स्वर में परिवर्तन लाते हुए) *भ्रम है गुरुदेव ! असुरों का यह मिथ्या प्रचार है। इस प्रकार वे स्वर्ग-पुरी की शांति को भंग करना चाहते हैं। यह उनकी चाल है। स्वर्ग-विजय की क्षमता किस*

असुर में है ?

बृहस्पति—अभी तक तुम सो ही रहे हो ! केवल तुम्हीं नहीं, तुम्हारी तरह और भी अनेक सो रहे हैं। उठो, उन्हें जगाओ ! अब यह विलासिता छोड़ो। स्वर्ग-भूमि पर असुरों का आक्रमण होने ही वाला है।

देव-पुरुष—वह कौन सा असुर है गुरुदेव, जो अकाल-मृत्यु को वरण करना चाहता है ? क्या वह देवताओं की शक्ति से बिलकुल ही अपरिचित है ?

बृहस्पति—वह देवताओं की शक्ति से परिचित होना नहीं चाहता। वह तो अपनी शक्ति का देवताओं को परिचय देना चाहता है।

देव-पुरुष—क्षमा करें गुरुदेव ! यह सुनकर मुझे हँसी आ रही है। वामन कभी आकाश छू सका है ?

बृहस्पति—शत्रु को अपने से दुर्बल समझना बड़े-से-बड़े शक्तिशाली को भी पराजय की ओर ले जाता है। और यह शत्रु नहीं है।

देव-पुरुष—आप ऋषि हैं। संन्यासी हैं। साधारण-सी बात पर कम्पित हो जाते हैं। किसी ने आपसे परिहास किया होगा। त्रिभुवन में ऐसा कोई भी शक्तिशाली शत्रु नहीं है जो देवताओं पर विजय की कल्पना भी कर सके। निश्चिन्त होकर आप तपस्या में रत रहें।

बृहस्पति—निश्चिन्त ही तो नहीं रह सका वत्स ! तभी आज तुम-जैसे देव-पुरुषों को नींद से जगाने के लिए घर-घर घूमना पड़ रहा है। क्या यह काम मेरा है ? किन्तु पिता का हृदय तो संतानों को अमंगल से बचाना चाहता है, तभी यह काम भी अपने ऊपर ही लेना पड़ा। महर्षि कात्यायन ने ठीक ही कहा—'देव-आचरण से धर्म क्षुब्ध है। भाग्य-लक्ष्मी विमुख है। देवगण विलासिता में डूबे हैं। शक्ति के मद में चूर हैं, किंतु अब भी आँखें खोलो ! रंभासुर के पुत्र महिषासुर को देव-दैत्य-जयी होने का वर मिला है। इन्द्र ने धोखे से

रंभासुर को मार दिया । इस पर—सारे असुरों में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी है । अब दावानल के लिए हवा के एक झोंके की ही आवश्यकता है ।'

देव-पुरुष (हाथ जोड़कर देवगुरु के चरणों में घुटने टेककर बैठ जाता है) औद्धत्य क्षमा हो गुरुदेव ! अपनी जन्म-भूमि की रक्षा के लिए आपके आदेश का अक्षर-अक्षर पालन करने को प्रस्तुत हूँ ।

[पट-परिवर्तन]

तृतीय दृश्य

राज-सभा

[कुछ ऊँची जगह पर दो सिंहासन पास-पास रखे हैं। एक पर दानव-सम्राट् महिषासुर बैठे हैं एवं दूसरे पर दानव-साम्राज्ञी अलकावती विराज रही हैं। सिंहासन से कुछ दूरी पर सिंहासन की ऊँचाई से कुछ नीचे रंग-मंच की एक ओर वृद्ध मंत्रिवर, आधे बूढ़े कोषाध्यक्ष तथा दो-चार उच्च पदाधिकारीगण बैठे हैं। दूसरी ओर कराल, चामर, उदग्र, चिक्षुर आदि सेनापतिगण सुशोभित हो रहे हैं। उनके नीचे दोनों ओर कुछ प्रमुख प्रजागण बैठे दिखाई पड़ रहे हैं।

पर्दा उठने के साथ ही रंग-मंच के दोनों ओर से कुछ कुमारियों के हाथ में थाल—जिस पर अक्षत, दूर्वा-दल, रोली और दीपक रखे हैं—लिये हुए प्रवेश। राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में मंगल-गीत गाती हैं। बीच-बीच में जहाँ 'शत वंदना हो' आता है, उसके साथ साथ कुमारियाँ थाली से अक्षत, दूर्वा-दल, रोली आदि अपने सम्राट् साम्राज्ञी पर फेंकती हैं एवं अपना-अपना सिर नवाती हैं।]

कुमारियों का सम्मिलित गीत—

दैत्यपति, शत वंदना लो!
राष्ट्रपति हे! अर्चना लो!
दानवों की वीरता की
रक्त-गाथा अमरता की
आज पूरी साधना हो!
दैत्यपति, शत वंदना लो!

उदित सूरज, लुप्त तारे
देखकर हैं चकित सारे

विश्व गूँजे आज जय से
अमर तेरी भावना हो !
दैत्यपति, शत वंदना लो !
नीति तेरी अटल होवे
विजय तेरी अर्घ्य होवे
शक्ति तेरी विश्व माने
शक्तिधर हे ! कामना लो !
दैत्यपति, शत वंदना लो !

[गीत समाप्त होते ही कुमारियाँ दो भागों में बँटकर सम्राट्-साम्राज्ञी के सिंहासन के पास आकर खड़ी हो जाती हैं]

वृद्ध मंत्री—(उठकर) *सम्राट् रंभासुर की कपटतापूर्ण हत्या के बाद सौभाग्य से दानवों को 'महिषासुर' जैसा महाबली नायक मिला। इस पवित्र सिंहासन पर आज तक जितने बैठे हैं उनकी कीर्ति-गाथा दानवों के इतिहास में अमर है। वृत्रासुर, बलि, हिरण्य-कशिपु, हिरण्याक्ष-जैसे महा-योद्धाओं ने अपनी महती शक्ति के बल पर त्रिभुवन में विजयिनी रक्त-ध्वजा फहराकर इस सिंहासन की यशो-गाथा को और भी उज्ज्वल कर दिया है। उन्होंने अपनी वीरता के बल पर महा शक्तिशाली देवताओं के भी छक्के छुड़ा दिए। स्वर्ग पर विजय प्राप्त की। देवताओं को भिक्षुओं की तरह जंगलों में वर्षों भटकना पड़ा। दानवों की सम्मिलित शक्ति के आगे देवताओं की एक भी न चली। छल-कपट से ही वे दानवों का अनिष्ट करते रहे। बाहु-बल एवं अस्त्र-बल में दानव अजेय हैं। दानवों की शिक्षा अस्त्र लेकर प्रारंभ होती है। रक्ताक्त-शराकीर्ण-रणांगन में उनकी परीक्षा होती है। दानवों के इस सिंहासन का इतिहास वक्ष के तप्त-रक्त से सर्वदा लिखा जाता रहा है। आज हमारा परम सौभाग्य है कि इस पवित्र सिंहासन पर महाबली महिषासुर को बैठे देख रहे हैं। सम्राट् के रूप में दानवों ने अपने-आपको बहुत पहले*

ही स्वीकार कर लिया है। राज्याभिषेक का यह उत्सव तो राज-नियम की पूर्ति-मात्र है। आज आपके बलिष्ठ हाथों में राज-दण्ड देते हुए **(राज-दण्ड सम्राट् महिषासुर को दिया जाता है)** *हम दानवों को अतीव प्रसन्नता हो रही है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप अपने वीर्यवान पितृ-पितामह के चरण-चिह्नों पर चलकर दानवों के आदर्श की रक्षा करते रहेंगे। बोलो—'दानव सम्राट् महिषासुर की—*

सभी—(एक स्वर में) *जय'*

वृद्ध मंत्री—बोलो,—*'साम्राज्ञी अलकावती की—*

सभी—(पूर्ववत् एक स्वर से) *जय!'*

वृद्ध मंत्री—बोलो,—*मातृभूमि की—*

सभी—*'जय'*

[सम्राट् महिषासुर उठकर अपने दक्षिण हस्त को ऊपर उठाते हैं। अर्थात् प्रजाजनों को अभय-दान देने का भाव]

महिषासुर—*राज्य के पदाधिकारीगण तथा प्रजावृन्द! आप लोगों ने मेरे प्रति जो आदर भाव प्रकट किया उसके लिए आप लोगों को धन्यवाद! राज्य के पुराने सच्चे सेवक के नाते वृद्ध मंत्रिवर ने पूर्वजों के इतिहास के पृष्ठों को खोलकर रखते हुए उनके चरण-चिह्नों पर चलने की जो आशा व्यक्त की उसे पूरा करने की मैं प्रतिज्ञा लेता हूँ। सिंहासन के सम्मान के लिए महिषासुर के राम की अन्तिम बूँद भी काम आयगी, महिषासुर की तलवार के दर्पण में दानवों की राज्य-श्री अपना शृङ्गार करती रहेगी। दानवों का आदर्श अक्षुण्ण रहेगा। दानव किसी पर अत्याचार या अविचार नहीं करता किन्तु वह अपने पर अत्याचार या अविचार होने भी नहीं देता। विष देकर वह विष को मारना जानता है। दानवों की उच्चाकांक्षा सुमेरु के उत्तुङ्ग शिखर से भी उन्नत है। वक्ष के शोणित से वह अभिनव इतिहास लिखा करता है। दानव प्राण देकर प्राणों की पूजा करना*

जानता है। पिता एवं पितृव्य दोनों को तपस्या की वेदी पर छल से हत्या करके देवराज इन्द्र ने जो अविचार किया है उसका उचित उत्तर तो उन्हें दिया ही जायगा। सिंहासन अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में है। दानव किसी भी जाति का अत्याचार मस्तक झुकाकर सहन नहीं कर सकता। हमें आप लोगों के हार्दिक सहयोग का गर्व है। हम अपनी प्रजा का मंगल चाहते हैं।

[महिषासुर सिंहासन ग्रहण करते हैं। चारों ओर 'सम्राट् महिषासुर की जय' होती है।]

[यवनिका]

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

दैत्यपुरी का राजमहल

[राजमाता महिषी और महिषासुर दोनों बातचीत करते हुए]

महिषासुर—माँ, मैं तपस्या के लिए जाना चाहता हूँ ।

महिषी—यह क्या कह रहा है महिष ?

महिषासुर—हाँ, माँ ! मैंने निश्चय कर लिया है ।

महिषी—किसकी तपस्या ?

महिषासुर—ब्रह्मा की ।

महिषी—क्यों ?

महिषासुर—पिता की तपस्या के बल से मैं देव-दैत्य-जयी अवश्य हूँ, किन्तु यह जय क्षणस्थायी है । मैं इस जय को चिर आयु देना चाहता हूँ ।

महिषी—तो तू यह कहना चाहता है कि पति के वियोग की असह्य वेदना को एक-मात्र पुत्र का मुँह देखकर जो सब-कुछ भूली हुई थी वह फिर नई वेदना की नई चिता में दग्ध होती रहे ?

महिषासुर—तुम्हीं सोचो न माँ, मेरी विजय की परमायु क्या है ! पानी के बुलबुले के समान, ओस की बूँद की तरह, इन्द्र धनुष की नाईं अभी है, अभी नहीं । इस विजय से क्या लाभ ! (स्वर में कुछ परिवर्तन लाते हुए) यह न सोचो माँ ! कि महिषासुर अपने पिता पर हुए अत्याचार को भूल गया है । वह देवताओं की शक्ति से कंपित है । महिषासुर जब चाहे अपने पिता के हत्यारे को बन्दी बनाकर अपनी माता के चरणों में उपस्थित कर सकता है । किंतु महिषासुर केवल इतना ही नहीं चाहता,—वह अपनी विजय को अमरता से

बाँधना चाहता है। और यही कारण है माँ, कि मैं इसके लिए कठोर-तपस्या करना चाहता हूँ;—पिता की तरह !

महिषी—इन्द्र बड़ा धूर्त है। उसकी कपटता को मैं एक बार अपनी आँखों से देख चुकी हूँ। क्या तू यह कहना चाहता है कि अपने एक-मात्र पुत्र—अपने हृत्पिण्ड को निकालकर दुबारा उसके जाल में डाल दूँ, और वह हस्तामलक की तरह मुझे जिधर चाहे, उधर घुमाता फिरे ?

महिषासुर—ऐसा नहीं हो सकता है माँ ! पिता की तपस्या का वर मेरे लिए अमोघ कवच है। इन्द्र की क्या शक्ति !

महिषी—किंतु मैं किसी प्रकार की विपत्ति मोल लेना नहीं चाहती।

महिषासुर—मेरी शक्ति पर विश्वास करो माँ !

महिषी—किंतु, क्या तुझे यह नहीं मालूम कि अग्निदेव के वरदान से स्वर्ग में कितनी उथल-पुथल मची हुई है ? क्या यह संवाद ब्रह्मा तक नहीं पहुँचा होगा ?—इस दशा में वे तुझे कोई नया वर देकर देवताओं के आगे क्या उत्तर देंगे ?

महिषासुर—सृष्टि के आदि-पुरुष—ब्रह्मा सृष्टिकर्ता के रूप में हैं। सारी सृष्टि के वे जनक हैं। उनके आगे देव, दानव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, मानव सभी समान हैं। सभी उनकी संतान हैं। सबके लिए करुणा का द्वार उन्मुक्त है। उनके आगे किसी प्रकार का भेद नहीं। मैं कठोर तपस्या से उनको अवश्य मुग्ध करूँगा। मेरी साधना से द्रवीभूत होने पर भी यदि वे अपनी करुणा से मुझे वंचित रखें तो इसमें भी मेरी जीत होगी माँ ! ऐसा वे कर ही कैसे सकते हैं ? क्या इस प्रकार देवत्व का विसर्जन नहीं होगा ! संसार उन्हें क्या कहेगा ?

रहा इन्द्र से प्रतिशोध की बात ! सो वह तो उसी समय ले लिया गया, जब मेरा जन्म हुआ। उसकी कपटता की कालिख, जो उसने अपने हाथों अपने मुँह पर मली, संसार ने देख ली। वह

अमर है,—नहीं तो मैं हत्या का बदला हत्या से ही लेता जननि ! मेरे हृदय में कम ज्वाला नहीं भड़क रही है। मेरी नस-नस में दानव-रक्त प्रवाहित हो रहा है। किन्तु क्रोध में आकर उत्तेजना-वश कोई कार्य करने से अनिष्ट भी हो सकता है। मैं दानव-जाति का भविष्य अन्धकार में डुबोना नहीं चाहता। मैं ऐसा कुछ करना चाहता हूँ जिससे दैत्य-कुल का नाम चिर-दिन उज्ज्वल रहे।

महिषी—तपस्या की अवधि तो अनिश्चित होती है। फिर राज-काज कैसे चलेगा ?

महिषासुर—सम्राट् महिषासुर की अनुपस्थिति में राजमाता की आज्ञा प्रजा के लिए शिरोधार्य होगी।

महिषी—तपस्या के निश्चय को क्या कुछ दिन के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता ?

महिषासुर—क्यों माता ?

महिषी—पुत्र-वधू निकट भविष्य में माँ बनने वाली है। क्या अपनी संतान का मुख देखकर नहीं जाओगे ?

महिषासुर—कर्त्तव्य के आगे ममता का बाँध दुर्बलता का सूचक है। दैत्य जाति के लिए मेरी तपस्या नितान्त आवश्यक है। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिए।

महिषी—राजा-शून्य पाकर राज्य पर कहीं शत्रु-आक्रमण कर बैठे तो ?

महिषासुर—चिक्षुर, चामर, कराल, उदग्र, असिलोमा-जैसे योद्धाओं के होते शत्रु की दाल नहीं गल सकती, दानव-सेना शिक्षित और संगठित है। राज-माता इसकी चिंता न करें। (नम्र स्वर में) आज्ञा दो माँ !

महिषी—जाओ, पुत्र ! साधना में सिद्धि-लाभ करो !

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

इन्द्रपुरी

[इन्द्र और कार्तिकेय गम्भीर मन्त्रणा में रत हैं ।]

इन्द्र—महिषासुर ने तो सारी चाल ही पलट दी । जैसी कठोर तपस्या वह कर रहा है उससे तो सृष्टिकर्त्ता को द्रवीभूत होना ही पड़ेगा । शत्रु होते हुए भी उसकी साधना की प्रशंसा करनी ही पड़ती है । पिता का पुण्य-बल उसकी रक्षा कर रहा है । नहीं तो जहाँ करम्भ और रम्भासुर को भेज दिया वहीं इसे भी भेज दिया होता । जहाँ कलंक लगा वहाँ थोड़ा और सही । देव जाति के कल्याण के लिए इन्द्र सब-कुछ करने को प्रस्तुत है ।

कार्तिकेय—उसने दोहरी चाल चली है । प्रजापति को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने मनोकामना पूरी कर दी तो उसकी जीत हुई ही । यदि ब्रह्मदेव ने देव जाति का ध्यान करके करुणा से वंचित किया तो उसे विश्व भर में विरोधी प्रचार करने के लिए उत्तम सामग्री मिल जायगी । किन्तु उसकी यह चाल विफल कर देनी होगी ।

इन्द्र—उपाय !

कार्तिकेय—तपस्या-भङ्ग ।

इन्द्र—महिषासुर की तपस्या भङ्ग करना कोई सरल कार्य नहीं है स्कन्द ! क्या तुम नहीं देख रहे कि वह किस उग्र तपस्या में बैठा है ? दानवों में अभी तक ऐसा कोई नहीं हुआ जो इतनी कड़ी साधना कर सका हो !

कार्तिकेय—बड़े-बड़े योगी, ऋषि की तपस्या जब भङ्ग हो सकती है तो उनके आगे महिषासुर क्या है !

इन्द्र—इसका अर्थ है, महिषासुर को तुम अभी तक अच्छी तरह

नहीं पहचान सके देव-सेनापति ! महा तेजस्वी अग्निदेव का वह वरद-पुत्र है। इसके अतिरिक्त उसकी धमनियों में दानव-रक्त प्रवाहित हो रहा है !—जो प्राण देकर प्राणों की पूजा करना जानता है। महिषासुर का जिस दिन जन्म हुआ उसी दिन मैंने यह अनुभव कर लिया कि यह दैत्य देव-जाति के लिए महा भयंकर सिद्ध होगा। देव-करुणा का लाभ उठाकर वह देव-जाति पार ही वंशगत प्रतिशोध के लिए कठोर प्रहार करेगा। वह अन्य दानवों की तरह क्रोध या उत्तेजना में नहीं आया। नहीं तो यह सम्भव था कि पहले उसकी विजय अवश्य हो जाती किन्तु विजय चिरस्थिर नहीं रहती। अब तो उसने चाल ही दूसरी दे दी।

कार्तिकेय—उपाय तो कुछ सोचना ही होगा।

इन्द्र—आज न तो उपाय सोचना पड़ता और न ही यह पीड़ा अनुभव करनी पड़ती। देवताओं का भाग्याकाश उसी दिन निर्मेघ हो जाता‥ ‥।

कीर्तिकेय—(बीच में बोलते हुए) किस दिन देवराज ?

इन्द्र—जिस दिन महिषी को भी उसके पति के साथ एक ही रास्ते पर भेज देने के लिए तैयार हो गया था।

कीर्तिकेय—उससे तो देवराज पर नारी-हत्या का पाप लगता।

इन्द्र—जाति के कल्याण के लिए इन्द्र अपने पर पाप का बोझ उठाने को प्रस्तुत था और पाप की बात सुनो,—स्कन्द ! जब युद्ध होता है, तब न जाने कितनी माताएँ पुत्र-विहीना हो जाती हैं, कितनी ललनाएँ वैधव्य की ज्वाला में झुलसने लगती हैं, कितने शिशु पितृ-हीन हो जाते हैं। रक्त की नदियाँ बहने लगती हैं। न जाने कितने निरपराधों की बलि चढ़ जाती है। चारों ओर हिंसा की आग-ही आग दहक उठती है। क्या यह पाप नहीं है ? इस विशाल संहार को रोकने के लिए एक का संहार धर्म की दृष्टि में पाप हो सकता है; किन्तु राजनीति में पाप नहीं है।

कार्तिकेय—नारी-हत्या राजनीति में भी निषिद्ध है देवराज !

इन्द्र—किन्तु उस नारी के लिए नहीं, जो विराट् संहार का कारण बनती हो।

कार्तिकेय—देव-धर्म उसकी भी तो आज्ञा नहीं देता । देवताओं के लिए राजनीति से अधिक धर्म मूल्यवान है। धर्म की भित्ति पर ही देवताओं के आदर्श का सौध खड़ा है। देवताओं को जब भी युद्ध करना पड़ा, धर्म की रक्षा के लिए ही और यही कारण है कि संसार में देवता पूजनीय हैं। यदि हम अपने स्वार्थ के लिए अन्याय एवं अधर्म का आश्रय लेंगे तो हमारा देवत्व कहाँ रह जायगा ? यह तो मंगल ही समझना चाहिए कि नारी-हत्या का पाप हम लोगों पर नहीं लगा। महाराज, सच्चा और सरल उपाय वह नहीं था। अब कुछ और ही सोचिए।

इन्द्र—मैं तो इतना ही जानता हूँ देव-सेनापति, कि विष की महौषधि विष ही है। दानवों ने हिंसा का आश्रय लेकर आज तक क्या नहीं किया ? क्या उसका प्रत्युत्तर प्रेम से दिया जा सका ? देव-धर्म के अतिरिक्त मेरे आगे राज-धर्म भी तो है। क्या मैं उसकी अवज्ञा कर दूँ ? राज-धर्म का मूल-मन्त्र 'छल-बल-कौशल' है। प्रजा के मङ्गल के लिए इसका आश्रय लेना अधर्म नहीं है। सत्य कहता हूँ स्कन्द ! देवगुरु को मैं दुःखित करना नहीं चाहता था और यही कारण है कि उस दिन मैं अपने निश्चित पथ से लौट आया।

कार्तिकेय—हो सकता है इसमें भी कुछ कल्याण छिपा हो ! बीती हुई बात को भूल जाइए। मेरे विचार से इस समय महिषासुर की तपस्या-भंग के लिए आप प्रयत्न करें। द्वितीय यह कि दैत्यपुरी पर अचानक आक्रमण कर दिया जाय यही सुअवसर है।

इन्द्र—देव-सेना प्रस्तुत है ?

कार्तिकेय—केवल सम्राट् की आज्ञा चाहिए।

इन्द्र—क्या अपनी सेना के बल पर दैत्यपुरी पर विजय पाने की

पूरी आशा की जा सकती है ?

कार्तिकेय—महिषासुर इस समय राज्य से बाहर है। दैत्यपुरी में युद्ध की कोई तैयारी भी नहीं। इस अवसर पर थोड़ी सी सेना से ही बड़ी सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है। दानवों का स्वर्गाक्रमण निश्चय समझना चाहिए। इससे पहले हम लोग ही क्यों न आक्रमण कर दें ?

इन्द्र—(हर्ष से) उचित युक्ति है, देव-सेनापति ! ऐसा ही हो !—उधर रति की सहायता से मैं तपस्या-भंग का भी प्रयत्न करता हूँ।

[दोनों उठ खड़े होते हैं।]

(पर्दा गिरता है।)

तृतीय दृश्य

साधना-स्थल

[महिषासुर तपस्वी के वेश में मृग-छाला पर ध्यान-मग्न बैठा है। तपस्या-भंग के लिए इन्द्र द्वारा भेजी गई अपूर्व सुन्दरी काम-कन्या जया का हाथ में पुष्प-हार लिये नृत्य करते हुए प्रवेश।]

जया—(नृत्य-गीत एवं हाव-भाव से तपस्या-भंग करने का अभिनय करती है।)

साधना में क्या धरा है प्यार के आगे ?
राज करना धर्म नृप का,
भोगना ऐश्वर्य जग का।
उठ चलो, मेरे तपस्वी !
छोड़ झंझट योग-मग का॥
भोग से बोलो, विमुख हो, प्राण ! क्यों भागे ?
साधना में·····॥
लोक तीनों बाहुओं में,
चाह कैसी तन जलाकर ?
पास सब कुछ, माँगते क्या;
अंग सोने का गलाकर ?
पास जिसके कुछ न हो, वरदान वह माँगे !
साधना में·····॥
योगिनी बन फिर रही मैं,
ढूँढ़ती कब से रही हूँ
प्यार के दो बोल को मैं
तरसती कब से रही हूँ

एक युग के बाद मेरे भाग अब जागे।
साधना में.....॥
खोल दो ये युगल लोचन
फूल चुन-चुन गूँथ लाई
बाँध लो, भुज बंधनों में
पूछती पथ पास आई!
यों न तोड़ो प्राण, मेरे प्रीत के धागे!

[गीत-नृत्य बंद होता है। महिषासुर टस से मस नहीं होता। रति का फूलों का तीर-धनुष लिये प्रवेश।]

रति—(निराशा के स्वर में) एक-एक करके सभी बाण व्यर्थ गए। तूणीर खाली हो गया। रति पर भी विजय! आश्चर्य!!

जया—देवि, मुझे बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग करने का गर्व था। किन्तु आज इस दानव ने मेरे अभिमान पर भी पानी फेर दिया। मैंने अपनी समस्त शक्ति से इसे मोहित करना चाहा किंतु क्षण भर के लिए भी इसने आँखें नहीं खोलीं। किसी दैत्य की ऐसी कठोर-तपस्या आज तक मैंने नहीं देखी।

रति—एक बार और चेष्टा करके देखो, जया!

जया—अब और चेष्टा करना व्यर्थ है। अंधे के आगे दीप-शिखा का कोई मूल्य नहीं है। मृतक के आगे रूप एवं पत्थर के आगे प्रेम-प्रदर्शन का अर्थ अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। इससे तो उत्तम यही है कि हम लोग देवराज से जाकर कहें कि वे ब्रह्मा जी से प्रार्थना करें कि इसे वरदान देते हुए देव-जाति के कल्याण का ध्यान रखें।

रति—चलो, ऐसा ही किया जाय।

[दोनों का एक ओर से प्रस्थान दूसरी ओर से ब्रह्मा का प्रवेश]

ब्रह्मा—(साधना रत महिषासुर के पास जाकर) उठो, वत्स! आँखें खोलो! (अपने कमण्डल से महिषासुर पर पानी छिड़कने का अभिनय)

महिषासुर—(धीरे-धीरे आँखें खोलते हुए) कौन ?—(आश्चर्य से) इष्टदेव !—चतुरानन !!—(उठ खड़ा होता है।)

ब्रह्मा—हाँ वत्स, मैं ही हूँ। तुम्हारी कठोर तपस्या से मुग्ध होकर यहाँ तक आने के लिए बाध्य हो गया। वर माँगो !

महिषासुर—इष्टदेव मुझ पर प्रसन्न हैं इससे बढ़कर वर महिषासुर को और क्या मिल सकता है।

ब्रह्मा—नहीं, साधक !—कुछ और।

महिषासुर—कुछ और ? (मन्द मुस्कराता है।) महिषासुर कुछ और माँगे ! मेरी मनोकामना पूरी होगी ?

ब्रह्मा—शक्ति से बाहर की बात न हो तो अवश्य पूरी होगी।

महिषासुर—शक्ति से बाहर नहीं होगी, इष्टदेव ! आप विधाता हैं। आपकी शक्ति अतुलनीय है। आपकी शक्ति से बाहर महिषासुर माँग भी क्या सकता है ?

ब्रह्मा—तो माँगो !—तुम्हारे लिए करुणा का द्वार उन्मुक्त है।

महिषासुर—(बड़े शांत स्वर में हाथ जोड़कर) अमरता और

ब्रह्मा—(आश्चर्य से) अमरता और पूजा !—

महिषासुर—हाँ, इष्टदेव ! अमरता और पूजा।

ब्रह्मा—अमरता और पूजा तो देवताओं की प्राप्य वस्तु है। दानव-सन्तान इसका अधिकारी नहीं हो सकता।

महिषासुर—क्या दानव आपकी संतान नहीं हैं ?

ब्रह्मा—संसार का प्रत्येक प्राणी प्रत्येक वस्तु का अधिकारी नहीं बन सकता।

महिषासुर—पिता एक पुत्र को सदा गोद में उठाए रखे और दूसरे को रोने के लिए छोड़ दे, क्या यह न्याय है ? देव-संतान चिर आयु भोग करे और संसार के सभी प्राणी मृत्युशील रहें ?

ब्रह्मा—अमरता वंशगत अधिकार है। देव-रक्त के साथ इसका

सम्बन्ध है। अमरता और पूजा चाहते हो तो देव-कुल में जन्म-ग्रहण का वर लो!

महिषासुर—(घृणा के स्वर में) उस देव-कुल में,—जहाँ तपस्या की वेदी पर साधक की हत्या होती है, निरस्त्र पर अस्त्र उठाया जाता है, छल-कपट से स्वार्थ सिद्ध किया जाता है? क्षमा करें, इष्टदेव! मुझे ऐसा वर नहीं चाहिए।

ब्रह्मा—अग्नि का निर्मल प्रकाश भी कभी-कभी भस्म से आच्छादित हो जाता है, वत्स! इसमें अग्नि का दोष नहीं। किसी देव-संतान से कोई अन्याय या अधर्म हो जाय तो दंड से वह मुक्त नहीं हो सकता!

महिषासुर—जिस कुल का राजा ऐसा अन्याय या अधर्म कर सकता है उस कुल के प्रति संसार की क्या धारणा हो सकती है, यह आप स्वयं भी अनुभव कर सकते हैं आदि पुरुष!

ब्रह्मा—राजा हो या रंक, देव हो या दानव कोई भी दंड-भोग से मुक्त नहीं है, महिष! कोई और वर माँगो!

महिषासुर—तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं अपनी तपस्या से आपको इतना द्रवीभूत अभी नहीं कर पाया हूँ कि मुझे दैत्य-कुल में रहते हुए अमरता और पूजा प्राप्त हो सके!

ब्रह्मा—यह बात नहीं।

महिषासुर—फिर?

ब्रह्मा—यह विधान-प्रतिकूल है।

महिषासुर—तो महिषासुर उस दिन तक तपस्या करता रहेगा, जिस दिन तक विधान अनुकूल न हो जाय। जाइए, इष्टदेव! महिषासुर को तपस्या करने दीजिए!

ब्रह्मा—अब और तपस्या की आवश्यकता नहीं है वत्स! मैं इस पर ही प्रसन्न हूँ। अमरता और पूजा को छोड़कर जो भी वर चाहो माँग सकते हो!

महिषासुर—अमरता और पूजा के अतिरिक्त महिषासुर की दूसरी कामना ही नहीं है। पिता के पुण्य-बल से महिषासुर देव-दैत्य-जयी है। महिषासुर अपने पुण्य-बल से उसे चिर आयु देना चाहता है।

ब्रह्मा—तो जाओ, आराधक !—देव, दानव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, मानव यहाँ तक कि त्रिभुवन में ऐसा कोई नहीं जिसके हाथ तुम्हारी मृत्यु हो ! तुम अजेय हो !—तुम्हारी मृत्यु होगी एक नारी के हाथ।

महिषासुर—(महान् आश्चर्य से) मेरी मृत्यु होगी,—वह भी नारी के हाथ !!!—यह क्या वरदान मिला विधाता ?

ब्रह्मा—जन्म जब हुआ है महिष, मृत्यु को एक दिन वरण तो करना ही होगा। रहा नारी के हाथ, —तो वह एक कारण-मात्र होगी।

महिषासुर—कारण-मात्र होगी, पर असाधारण !—और उस असाधारण की सृष्टि विधाता स्वयं मेरे विनाश के लिए ही करेंगे, यही न ?

ब्रह्मा—ऐसा क्यों सोचते हो, महिष ?

महिषासुर—विधाता पुरुष ! मेरी तपस्या से यदि आप सच्चे हृदय से प्रसन्न हैं तो उसे ही साक्षी रूप में रखकर कहता हूँ, मेरे लिए आप एक असाधारण नारी की सृष्टि अवश्य करेंगे। महिषासुर को आपने जो वरदान दिया, उसे वह नत-मस्तक होकर ग्रहण करता है; किंतु मेरे लिए यह वरदान नहीं,—अभिशाप है।

ब्रह्मा—अभिशाप नहीं, वत्स !—इतना बड़ा वरदान अभी तक दानवों को किसी ने नहीं दिया।

महिषासुर—या यों कहिए कि इतना बड़ा अभिशाप आज तक किसी दानव को नहीं मिला।

ब्रह्मा—नहीं, महिष ! फिर तुम मेरे अन्तःकरण को नहीं समझ

सके। जाओ,—त्रिभुवन में तुम्हारी वीरता अमर होकर रहेगी।

महिषासुर—कृतज्ञ हूँ, इष्टदेव! किंतु महिषासुर आपके सम्मुख यह प्रतिज्ञा करता है कि जो वस्तु तपस्या से नहीं मिली उसे वह शक्ति से प्राप्त करेगा। आज से नई साधना शुरू होगी,—नई पूजा प्रारंभ होगी। राज-पाट, धन-जन, पुत्र-परिवार सब-कुछ अर्पण करके भी महिषासुर कामना पूरी करके रहेगा। विशाल पूजा-आयोजना देखकर त्रिभुवन दंग रह जायगा। समुद्र-मंथन की तरह तीनों लोकों को मथकर महिषासुर उस नारी को ढूँढ़ेगा, जिसके अँचल में उसका मृत्यु-बाण छिपा होगा। साथ ही यह भी सुन रखें, इष्टदेव! महिषासुर को यह विश्वास है कि उस असाधारण नारी का जन्म अभी नहीं हुआ। उसकी रचना विधाता एक दिन मेरे लिए ही करेंगे। महिषासुर की मृत्यु का शर-संधान नारी के हाथ नहीं-अपने इष्टदेव के हाथ होगा। (महिषासुर प्रस्थानोद्यत)

[पट-परिवर्तन]

चतुर्थ दृश्य

रण-क्षेत्र

[दैत्य योद्धा कराल और देव-सेनापति कार्तिकेय का युद्ध करते हुए प्रवेश। कुछ क्षण बाद दोनों अस्त्र रोकते हुए।]

कराल—(व्यंग से) राजा की अनुपस्थिति में किसी के राज्य पर अचानक आक्रमण करना, देवताओं के लिए धर्म-युद्ध है; क्यों देव सेनापति ?

कार्तिकेय—(क्रोध पूर्वक) दानवों के पास हम धर्म की शिक्षा लेने नहीं आए हैं।

कराल—देवगण को तो धर्म का अहंकार है न ?

कार्तिकेय—इसीलिए संसार में वे पूजनीय हैं।

कराल—(व्यंग से) हाँ, इसीलिए आज संसार आँखें खोलकर आपके धर्म को देख रहा है। (स्वर में परिवर्तन लाते हुए) दानव-सम्राट् महिषासुर की अनुपस्थिति में भी दैत्यसेना से उचित शिक्षा हो मिलेगी—देव-सेनापति ! (पुनः व्यंग पूर्वक) देवराज के गुप्तचरों ने दैत्यसेना का रहस्य खोल दिया होगा। देवराज की आँखें खुशी से चमक उठी होंगी और देव-सेनापति ने सोचा, यही सुनहला अवसर है। क्यों ?

कार्तिकेय—वचन-विन्यास से युद्ध नहीं जीता जा सकता। देव-सेना की तस्वीर इसका उचित उत्तर देगी।

कराल—तभी देव-सेना तितर-बितर होकर इधर-उधर भाग रही है।

कार्तिकेय—हाँ, तभी दैत्यों की मृत देहों का ढेर लग गया।

कराल—अचानक आक्रमण करने वाला पहले तो रंग दिखायगा

ही ! किन्तु प्रत्याक्रमण हुआ तब उसका रंग कहाँ गया सेनापति ?

कार्तिकेय—(रूखे स्वर से) समय पर पीछे हटना, युद्ध की एक नीति है । इसे दानव क्या जाने । सावधान ! मेरे अस्त्र का आघात सहन करो । (अस्त्र उठाता है ।)

कराल—(वार रोकते हुए) जाओ, सेनापति ! अपनी छत्र-भंग सेना को पुनः संगठित करो । कराल अवसर देता है ।

कार्तिकेय—यह उदारता अपने पास सुरक्षित रख लो । अकेले षडानन के अस्त्र में इतनी शक्ति है कि वह समस्त दैत्य-सेना को पीठ दिखाने के लिए बाध्य कर दे ।

कराल—षडानन के अस्त्र में इतनी शक्ति होती तो अचानक आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । युद्ध-घोषणा करके वीरों की तरह ललकारा होता । जाओ, स्वर्ग में तुम्हें राज-नर्तकियाँ याद कर रही होंगी ।

कार्तिकेय—साथ ही राज-नर्तकियाँ तुम्हारे मुण्ड की भी प्रतीक्षा कर रही हैं । सावधान !

[दोनों का युद्ध करते हुए एक ओर से प्रस्थान । दूसरी ओर से एक देव-पुरुष का हाथ में एक पात्र (लोटा-जैसा) लिये, जिसमें कुछ पेय वस्तु है, प्रवेश ।]

देव-पुरुष—(विदूषक-सा, पर सेना की पोशाक में । तलवार को दूर फेंकते हुए) धत् तेरे की ! अरे, भाई, हम-जैसों से कहीं लड़ाई-भिड़ाई होती है । उठाया अपना भंग का पात्र, डाला गले में,—कहीं आनन्द पूर्वक पड़े रहे ! सो नहीं,—'चलो लड़ाई में ।' (कुछ क्षण रुककर नेपथ्य की ओर देखते हुए) लड़ो भाई, खूब लड़ो ! हमारी ओर से भी लड़ लो ! अपने राम तो यह बैठे (एक ओर को बैठ जाता है । फिर हाथ में भंग के पात्र को ऊपर करके कुछ पीने की मुद्रा में) जय भंग-भवानी !—शंकर की महारानी !! तेरा ही आसरा । (थोड़ा पीने लगता है ।)

[इतने में कुम्भासुर और दम्भासुर नाम के दो दैत्यों का प्रवेश ।]

कुम्भासुर—(कृपाण उठाते हुए) *मारो !—काटो !—एक सिरे से दूसरे सिरे तक । किसी को मत छोड़ो । चाहे कोई हो, अपना देखो, न पराया ।*

दम्भासुर—*हमारे पक्ष की सेनाओं को भी !*

कुम्भासुर—*हमारा-तुम्हारा देखते रहोगे, तो युद्ध क्या करोगे ?*

इतने में भंग का पात्र हाथ में लिये देव-पुरुष उठ खड़ा होता है ।]

देव-पुरुष—(उन दोनों के पास आकर) *शाबाश ! यही तो वीरों का लक्षण है । भाई, तुम तो बड़े तेजस्वी मालूम पड़ते हो । तुम्हारे मस्तक की रेखाएँ बता रही हैं कि तुम राजा होगे ।*

[दोनों उसकी ओर देखने लगते हैं ।]

कुम्भासुर—*ए ! तुम कौन हो ?*

देव-पुरुष—*न देव,—न दानव !*

कुम्भासुर—*फिर कौन ?*

देव-पुरुष—*महादेव का चेला ।*

दम्भासुर—*तुम भाग्य देखना जानते हो ?*

देव-पुरुष—*क्यों नहीं ?*

दम्भासुर—(अपना हाथ बढ़ाते हुए) *लो, बताओ ! इसमें क्या लिखा है ?*

देव-पुरुष—(उसके हाथ को अपने बाँएँ हाथ पर रखकर कुछ क्षण देखता है । फिर गंभीर होकर) *तुम्हारा हाथ तो बड़ा अच्छा है । वैसे रंग काला है, पर रेखाएँ बड़ी उज्ज्वल हैं । तुम जब कुछ खाओगे तो मुँह हिलता रहेगा । और यह जो शनि का घर है यह तो साफ बता रहा है कि तुम जब सो जाओगे, तो तुम्हारी आँखें बंद रहेंगी ।*

दम्भासुर—(कुम्भासुर की ओर मुँह करके) *कुम्भ, यह तो बड़ा गुणी मालूम पड़ता है । सब-कुछ सच है !* (देव-पुरुष की ओर

इंगित करके) हाँ, और क्या लिखा है ?

कुम्भासुर—(बीच में बोलते हुए) ठहरो, मेरा भाग्य देखो !

देव-पुरुष—(उसके मुँह की ओर दृष्टि डालते हुए) आपकी भौंहों की ऊँचाई-नीचाई कह रही है कि आप बड़े प्रतापी हैं। (अपना दाहिना हाथ, जिसमें भंग का पात्र है, कुम्भासुर की नाक की ओर ले जाते हुए) और यह जो नाक की बनावट है, यह तो आपके उदार-हृदय का परिचय दे रही है।

कुम्भासुर—(दो कदम पीछे हटते हुए) हाथ मे क्या है ?

देव-पुरुष—डरो नहीं। यह तो भंग-भवानी है ! बड़े सस्ते में शिवत्व प्राप्त किया जा सकता है। इसे जो एक बार पी लेता है उसके लिए 'तेरा-मेरा' का कोई झगड़ा नहीं रहता। सारे संसार का वह अपना हो जाता है और सारा संसार उसका अपना बन जाता है।

दम्भासुर—(बड़े आश्चर्य से) ऐसा !!—तो पहले मुझे पिलाओ ! मेरी पत्नी से मेरा प्रतिदिन झगड़ा होता है।

[पीने का भाव प्रदर्शित करते हुए मुँह के पास हाथ ले जाता है और थोड़ा झुक जाता है।]

देव-पुरुष—(कुम्भासुर को संबोधन करते हुए) आप भी लीजिए !

कुम्भासुर—मुझे राजा बनाओगे !

देव-पुरुष—क्यों नहीं !

[दोनों ही पीने लगते हैं। पीने के बाद दोनों ओंठ चाटने लगते हैं।]

कुम्भासुर—अब मुझे राजा बनाओ !

दम्भासुर—मैं भी राजा बनूँगा।

देव-पुरुष—(आश्चर्य से) एक साथ दो राजा ?

दम्भासुर—चलो, बारी-बारी से।

कुम्भासुर—स्वीकार है; किंतु पहले मैं।

देव पुरुष—उत्तम। पर एक को सिंहासन बनना पड़ेगा। सिंहासन के बिना राजा का कोई मूल्य नहीं।

कुम्भासुर—(दम्भासुर की गर्दन पकड़कर) चलो; तुम सिंहासन बनो! और देखो, चेला जी!—मैंने तुम्हें मंत्री बना दिया।

[दम्भासुर हाथों और घुटनों के बल बैठता है। उसकी पीठ पर बड़ी शान से कुम्भासुर राजा बनकर बैठते हुए।]

कुम्भासुर—देखो, चेला जी!—नहीं, नहीं—मंत्री जी! अभी युद्ध बंद का आदेश प्रचारित कर दो।

देवपुरुष—मैं भी आपको यहाँ मंत्रणा देने वाला था। यह 'तेरा-मेरा' का झगड़ा संसार से समाप्त हो जाना चाहिए। विश्व की दो बड़ी जातियों—देव और दानवों को आपस में लड़ते देखकर बड़ी ग्लानि अनुभव होती है। हम अपनी संतान को क्या मुँह दिखायँगे? अपनी अपनी सीमा में दोनों फलें-फूलें, उन्नति करें। सो नहीं, एक दूसरे के प्राण लेने को उतारू हैं।

दम्भासुर—(नीचे से ही) दोनों को भंग पिलाओ! तभी इनकी मति ठीक होगी।

कुम्भासुर—(नीचे दंभासुर की ओर मुँह करके) ए! सिंहासन भी कहीं बोलता है?

दंभासुर—बोलता है, (थोड़ा हिलकर) डोलता है और जब लड़खड़ाता है तो राजा जी चारों खाने चित्त! (वह सीधा पेट के बल लम्बा लेट जाता है। कुम्भासुर गिर पड़ता है।)

कुम्भासुर—(अपने शरीर को फाड़ते हुए उठ खड़ा होता है। दंभासुर को डाँटते हुए) ए! राजा को गिरा दिया?

दम्भासुर—(लेटा-ही-लेटा) अब नया राजा बैठेगा।

कुम्भासुर—अच्छा यही सही। (देव-पुरुष को पकड़कर राजा बनकर बैठने के लिए कहता है।)

[इतने में दंभासुर उठकर]

दम्भासुर—*राजा के साथ-साथ सिंहासन भी बदल जायगा। चलो, तुम सिंहासन बनो !*—(कुम्भासुर की गर्दन पकड़ कर सिंहासन बनाता है।)

[कुम्भासुर हाथों और घुटनों के बल सिंहासन बनता है। उस पर दम्भासुर शान से बैठता है।]

दम्भासुर—(देव पुरुष से) *ऐ ! तुम हमारी रानी बनो ! बिना रानी के राजा की शोभा नहीं।*

देव पुरुष—(अपनी मूँछों को दिखाकर) *इन लम्बी-लम्बी मूँछों के साथ ?*

दम्भासुर—*इन्हें घूँघट से ढँक लो !* (कुम्भासुर की पीठ पर से उठते हुए देवपुरुष के सिर पर की पगड़ी को खोलकर उसके मुख पर घूँघट कर देता है। फिर उसका हाथ पकड़ कर अपने साथ बाँईं ओर बिठाता है।)

[कुम्भासुर की पीठ पर दोनों बैठते हैं। कुम्भासुर अचल रहता है।]

दम्भासुर—(देवपुरुष की घूँघट-युक्त ठोड़ी पकड़ कर कुछ ऊपर उठाते हुए) *महारानी ! चलो,—हम किसी अन्य स्थान पर अपनी राजधानी बनाएँ ;—इन्हें लड़ने दो ! पकड़ो सिंहासन।*

[दोनों उठ खड़े होते हैं। एक ओर दंभासुर एवं दूसरी ओर देव-पुरुष घुटने के बल बैठे हुए कुम्भासुर को पकड़ कर घसीटते हुए ले जाते हैं। दूसरी ओर से इन्द्र का प्रवेश।]

इन्द्र—(भाल से पसीना पोंछने का अभिनय करते हुए। स्वगत) *दैत्य-सेना की शक्ति के अनुमान में देव-सेनापति धोखा खा गए। महिषासुर की अनुपस्थिति भी हमारे लिए—*

[बात काटते हुए देवगुरु बृहस्पति का प्रवेश]

बृहस्पति—*लाभदायक सिद्ध न हो सकी। क्यों ?—*

इन्द्र—(गुरुदेव को अभिवादन करते हुए) प्रणाम गुरुदेव ! (आश्चर्य भरे स्वर में) आप युद्धभूमि में ?

बृहस्पति—हाँ, देवेन्द्र ! आना ही पड़ा । युद्ध के लिए यह उचित अवसर नहीं था । बड़ी शीघ्रता कर दी । अब और हानि न उठाकर अविलम्ब संधि कर लो !

इन्द्र—संधि कर लें ? इसका अर्थ देवराज इन्द्र अपने आभिजात्य-गौरव को दानवों के चरणों में लुटा दे ? ऐसा नहीं हो सकता, आचार्य ! इन्द्र पराजय से नहीं डरता । पराजय उसके लिए जय का सोपान है । (नम्र स्वर में) संधि के लिए विवश न कीजिए । स्वर्गपुरी लौटकर देव-संतानों को धैर्य दीजिए गुरुदेव !

वह देखिए (एक ओर अँगुलि-निर्देश करते हुए) दैत्य सेनापति चिक्षुर इधर ही आ रहा है । इन्द्र का अस्त्र उसका रास्ता अवरुद्ध करता है । (म्यान से तरवारि निकालकर दूसरी ओर इशारा करके) आप इस ओर सकुशल निकल जायँ ।

[एक ओर से बृहस्पति का प्रस्थान दूसरी ओर से चिक्षुर का रणोन्मत्त भाव से हाथ में शोणित युक्त तरवारि लिए प्रवेश ।]

चिक्षुर—सावधान देवेन्द्र ! (अस्त्र चलाता है ।)

[इन्द्र उसके वार को रोकता है । थोड़ी देर आपस में लड़ाई होती है । फिर दोनों अस्त्र रोकते हुए ।]

चिक्षुर—देवराज ने भूल से भयंकर विषधर को रस्सी समझ लिया ।

इन्द्र—वासव आज उसी विषधर का फन कुचलने के लिए आया है ।

चिक्षुर—वासव का वह तेज कभी का अस्त हो चुका । (व्यंग से) सोए हुए सिंहों को जगाकर व्यर्थ में आपने विपत्ति मोल ली महाराज !

इन्द्र—देव-सेना का एक-एक योद्धा सिंहो के दाँत गिन रहा है ।

चिक्षुर तभी देव-सेनापति कार्तिकेय कराल के हाथ बंदी बन चुके हैं और तभी देव-सेना विशृङ्खलित होकर इधर-उधर भाग रही है।

इन्द्र—भाग नहीं रही है,—एकत्रित होकर नई शक्ति से दैत्यों पर प्रहार कर रही है। सावधान, चिक्षुर!

[दोनों के अस्त्र की खनखनाहट, लड़ते हुए देवराज की तलवार हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ती है।]

चिक्षुर—(व्यंग से) अस्त्र उठा लें, देवराज! चिक्षुर निरस्त्र पर प्रहार नहीं करता। यह कार्य तो आपको ही शोभा देता है। (स्वर बदलकर) तपस्या की वेदी पर साधकों की हत्या करने वाले देवेन्द्र, यही आपकी वीरता है?

इन्द्र—देवेन्द्र की वीरता अब भी अक्षुण्ण है।

चिक्षुर—(व्यंग से) चिक्षुर से अस्त्र की भिक्षा लेकर उस अक्षुण्ण वीरता का प्रदर्शन कर सकते हैं, महाराज! [अपनी तरवारि की नोक से देवराज की गिरी हुई तरवारि को उठा देने का भाव]

इन्द्र—(गर्व से) वासव कभी अस्त्र की भिक्षा नहीं लेता।

चिक्षुर—प्राणों की भिक्षा?

इन्द्र—देवता अमर है।

चिक्षुर—(दर्प से) इस अमरता से मृत्यु सौ गुनी उत्तम है देव-सम्राट्! चले थे दैत्यपुरी विजय के लिए। अब दैत्यपुरी का कारागार सम्राट् की प्रतीक्षा कर रहा है। चलिए—वहाँ का राज-पाट आपको सम्भाल दें!—

[दोनों जाने को उद्यत]

(पट-परिवर्तन)

पंचम दृश्य

राज-दरबार

[सिंहासन पर महिषासुर विराज रहे हैं । उनके दोनों ओर वृद्ध मंत्री, ढलती अवस्था के कोषाध्यक्ष, कराल, चामर, उदग्र, चिक्षुर आदि सेनापति-गण सुशोभित हो रहे हैं ।]

महिषासुर—(वृद्ध मंत्री से) *मंत्रिवर, यह युद्ध कैसा ?*

मंत्री—(उठकर) *राजा शून्य पाकर देव-सेना का दानव-राज्य पर आक्रमण ।*

महिषासुर—(आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करते हुए) *ओः देवेन्द्र की वीरता यहाँ तक पहुँची । परिणाम ??—*

मंत्री—*अचानक आक्रमण होने से पहले तो हमारी कुछ क्षति अवश्य हुई, किंतु सेनापति चिक्षुर, कराल आदि की अपूर्व वीरता से पासा ही पलट गया । देवसेना छत्र-भंग होकर रण-भूमि छोड़ गई । देव-सेनापति कार्तिकेय एवं देवराज इन्द्र हमारे कारागार की शोभा बढ़ा रहे हैं ।*

महिषासुर—*देवराज इन्द्र कारागार में ? वे किसके हाथ बन्दी हुए ?*

मंत्री—*महाबली चिक्षुर के ।*

महिषासुर—(हर्ष से) *सेनापति चिक्षुर के !*

[चिक्षुर अपने स्थान से उठ खड़ा होता है और नम्रता प्रदर्शित करने के लिए अपना मस्तक झुका लेता है ।]

महिषासुर—(चिक्षुर की ओर दृष्टि-निक्षेप करते हुए) *सेनापति चिक्षुर ने महिषासुर की आशा से भी बढ़कर काम कर दिखाया । इसके लिए हम बहुत प्रसन्न हैं । सिंहासन इस वीरता के लिए सेनापति चिक्षुर को ससम्मान आज से प्रधान सेनापति का पद प्रदान करता है ।*

[चिक्षुर सम्राट् महिषासुर के सिंहासन के पास आकर घुटने टेकते हुए म्यान से तरवारि निकालकर मस्तक तक ले जाता है ।

नेपथ्य और रंगमंच में चारों ओर हर्ष ध्वनि । शंख, ढोल, गोमुख आदि बाजों से स्वागत ।

चिक्षुर उठकर धीरे-धीरे पीछे की तरफ पाँव हटाते हुए, जिससे सम्राट् को आर पीठ न होने पाय—अपनी जगह पर आ बैठता है ।]

मंत्री—*सेनापति कराल ने कार्तिकेय को बंदी बनाकर देव-सेना को छत्र-भंग होने के लिए बाध्य किया ।*

[कराल अपनी जगह से उठ खड़ा होता है और नम्रतापूर्वक मस्तक झुका लेता है ।]

महिषासुर—(कराल की ओर दृष्टि डालते हुए) *सुन्दर ! ऐसे वीरों पर ही हमारी रक्त-ध्वजा को गर्व है ।* (अपने कटि-प्रदेश से तरवारि निकालते हुए) *सम्राट् की ओर से दसों दिशाओं में कीर्ति फैलाने वाली यह तरवारि भेंट !* (तरवारि कराल को देने के लिए उद्यत ।)

[कराल सम्राट् के पास आकर घुटनों के बल बैठते हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर तरवारि ग्रहण करता है । ग्रहण करने के पश्चात् खड़े होकर तरवारि को हाथ से शून्य में चमकाते हुए ।]

कराल—'*सम्राट् महिषासुर की—*'

अन्यलोग—'*जय*'

कराल—'*मातृभूमि की—*'

अन्यलोग—'*जय*'

[पीछे पाँव हटाते हुए कराल का अपना स्थान ग्रहण ।]

महिषासुर—(सिंहासन पर बैठे-ही-बैठे) *प्रिय सभासद्गण ! हमारी अनुपस्थिति में आप लोगों ने सच्चे हृदय से राज्य की और मातृभूमि की जो सेवा की है उसके लिए धन्यवाद । आप लोगों को*

यह मालूम ही है कि दैत्यवंश के यश को चिर आयु देने के लिए जो तपस्या की गई, उसमें संपूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। त्रिभुवन-विजयी होने का वर तो मिला और यहाँ तक कि देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मानव किसी के हाथ महिषासुर की मृत्यु नहीं होगी; किंतु उसकी मृत्यु होगी एक नारी के हाथ !

सभासद्‌गण—(एक साथ महान् आश्चर्य से) नारी के हाथ !

मंत्री—त्रिभुवन-विजयी महिषासुर की मृत्यु नारी के हाथ !

चिक्षुर—वरदान नहीं, यह अभिशाप है !

कराल—यह धोखा है !

महिषासुर—विधाता का कहना है, अमरता देवताओं की प्राप्य-वस्तु है। देवताओं के अतिरिक्त संसार के सभी प्राणी मरण-शील हैं !

मंत्री—यह अन्याय है !

चिक्षुर—दानवों को चिरदिन पददलित बनाए रखना चाहते हैं।

कराल—क्या यही देवताओं की करुणा है ?

महिषासुर—जो भी हो। महिषासुर अब यह देखना चाहता है कि वह नारी कौन है ? यह तो निश्चित है कि उसका अभी जन्म नहीं हुआ। वह कोई साधारण नारी नहीं हो सकती। महिषासुर की मृत्यु के लिए ब्रह्मा को एक असाधारण नारी की सृष्टि करनी ही पड़ेगी। महिषासुर इसके लिए विधाता को बाध्य भी करेगा।

मंत्री—शक्ति से।

महिषासुर—हाँ, मंत्रिवर ! महिषासुर ने भी यही निश्चय किया है। (सिंहासन से उठते हुए जोश के साथ हाथ को ऊपर उठाकर।)

[उनको उठते देखकर सभी उठ खड़े होते हैं।]

"—तपस्या से जो वस्तु प्राप्त नहीं हो सकी, महिषासुर उसे शक्ति से प्राप्त करेगा। आज से नई पूजा शुरू होगी। इस पूजा का

मंत्र महिषासुर पहले उच्चारित करेगा,—आप लोग उसे दिशाओं में ध्वनित करें। किंतु, मंत्र होगा—अस्त्रों की खनखनाहट। (मंत्री की ओर देखकर) मंत्रिवर, महिषासुर के इस महान् यज्ञ का आयोजन आज से ही प्रारंभ हो जाना चाहिए। विराट् यज्ञ-कुंड बनेगा। उससे उठती हुई आग की लपटों को त्रिभुवन कंपित होकर देखे। नारियों का अश्रु-जल घृत का काम करेगा। तपस्वियों की तपस्या और ब्राह्मणों की पूजा यज्ञ की आहुति बनेगी। विघ्न बनकर जो भी आगे आयगा, उसकी बलि दी जायगी। इसमें स्वजन, पुत्र, परिवार किसी को क्षमा नहीं। संसार चकित होकर महिषासुर का यज्ञ देखेगा। महिषासुर का प्रधान सेनापति होगा,—इस यज्ञ का प्रमुख सहायक। (वृद्ध मंत्री की ओर दृष्टि डालते हुए, गंभीर होकर) मंत्रिवर, देवराज इन्द्र एवं देव-सेनापति को मुक्त कर दिया जाय।

मंत्री—(आश्चर्य से) मुक्त !! -

महिषासुर—हाँ, मुक्त और उनकी जगह स्वर्ग की रमणियों से कारागार पूर्ण किया जाय। (सेनापति की ओर इंगित करते हुए) जाइए, सेनापतिगण ! अपनी-अपनी सुदृढ़ वाहिनी लेकर त्रिभुवन में दानवों का विजय-वैजयंती फहराएँ।

[यवनिका]

पंचम अंक

प्रथम दृश्य

तपोवन

[कुछ ऊँची जगह—मृगछाला पर ऋषि कात्यायन एवं देव-गुरु बृहस्पति विराजमान हैं। उनके नीचे एक ओर इन्द्र, दूसरी ओर कार्तिकेय बैठे हैं। सभी गम्भीर मुद्रा में विचार-विनिमय कर रहे हैं।]

इन्द्र—तीनों लोकों पर महिषासुर ने विजय प्राप्त कर ली। त्रिभुवन में महिषासुर की सेनाओं ने जो अत्याचार प्रारम्भ किया वह असहनीय होता जा रहा है। स्वर्ग को तो एक प्रकार से रौंद ही डाला। देवताओं की जाया, दुहिता, भगिनी, और माता सभी आज दैत्यपुरी के कारागार में बन्दिनी हैं। देव-नर्त्तकियों एवं देव-कन्याओं को दैत्य-सेना के मनोरंजन के लिए बाध्य किया जा रहा है। पूजा और तपस्या पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। भय के मारे सभी ऋषि-मुनि महिषासुर को यज्ञ-भाग दे रहे हैं। किसी भी नारी पर किसी प्रकार का सन्देह होने से उसे कारागार में डाल दिया जाता है। तीनों लोकों में भयंकर आतंक छाया हुआ है। दैत्य-सेना के अत्याचार का यह ताण्डव-नर्तन और कब तक होता रहेगा ऋषिवर ?

कात्यायन—जब तक घड़ा पूर्ण नहीं हो जाता।

कार्तिकेय—घड़ा पूर्ण होने में क्या अब भी देर है ? सत्य कहता हूँ मुनि-श्रेष्ठ, अमर न होकर यदि मरणशील होता तो अपने रक्त से कालिमा की ये रेखाएँ मिटा देता।—देव-साम्राज्ञी शचीरानी, देवमाता

अदिति, देव-दुहिताएँ, देव-कन्याएँ, आज महिषासुर की बन्दिनी हैं। देवगण जंगलों में भटक रहे हैं। संसार से पूजा-तपस्या सब कुछ नष्ट कर दी गई है। शक्ति के बल से असुर होकर भी यज्ञ-भाग ले रहा है। असुरों के डर से त्रिभुवन काँप रहा है। नारियों के क्रन्दन से दिशाएँ बधिर हो रही हैं : क्या इस पर भी घड़ा पूरा नहीं हुआ ?

बृहस्पति—अब और अधिक देर नहीं है षडानन ! साहस मत हारो। आँधी के आगे जो झुक गया, वह फिर कभी खड़ा नहीं हो सकता। संसार में पाप का साम्राज्य अधिक दिन तक नहीं टिका करता।

इन्द्र—जिस जाति की नारियों पर विजातीय द्वारा अत्याचार हो रहा हो, उस जाति के पुरुषों के लिए तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है गुरुदेव !

बृहस्पति—नारियों पर अत्याचार सभी जाति के लिए कलंक की बात है। असुरों की नारियाँ देवताओं के आगे माँ-बहनों के समान हैं। यदि असुरगण मदोन्मत्त होकर देव-नारियों को अपनी माँ बहनों के समान नहीं देखते तो इसका फल उन्हें भोगना ही पड़ेगा।

कार्तिकेय—वही तो पूछता हूँ देवगुरु ! वह दिन कितनी दूर है ?

कात्यायन—देवगण के कर्म-भोग का जिस दिन अन्त हो जायगा, जिस शक्ति के मद में चूर होकर देव-सेना एक दिन अन्धी होकर दौड़ रही थी, ठीक उसी प्रकार आज दैत्य सेना का पतन हुआ, दैत्य-सेना का पतन भी अवश्यम्भावी है। कर्म की गति सबको घुमाया करती है स्कन्द !

इन्द्र—अपनी तपस्या के बल पर वह शुभ दिन अब और

दूर न होने दीजिए, ऋषिश्रेष्ठ !

कार्तिकेय—दैत्यसेना का पतन सम्भव हो सकता है, किन्तु दैत्य-सम्राट् के पतन की कोई आशा नहीं दिखाई देती ! अकेले महिषासुर के खड्ग में इतनी शक्ति है कि वह त्रिभुवन पर राज्य कर सकता है ।

कात्यायन—भूल ! कार्तिकेय ! सम्राट् कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, अकेले अधिक दिन तक राज्य की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकता !

इन्द्र—महिषासुर असम्भव को भी संभव कर सकता है । वृत्रासुर ने स्वर्ग जीता, किन्तु मेरे वज्र के आगे वह नहीं ठहर सका । तीनों लोकों को जीतने वाला तारकासुर अन्त में षडानन के हाथों मारा गया । त्रिपुरासुर का वध करके शिव त्रिपुरारि कहलाए । मधु व कैटभ का भगवान् विष्णु ने अन्त किया, किन्तु महिषासुर अजेय है । एक-एक कर सभी देवता उसके बन्दी बन चुके हैं । आज हम लोग जंगलों में भटक रहे हैं । दैत्य-सेना के विनष्ट होने पर भी महिषासुर के नाश का कोई लक्षण तो नहीं दिखाई पड़ता, मुनिवर !

बृहस्पति—महिषासुर को उसका कर्म ही विनाश के पथ पर लिए जा रहा है वत्स ।

कार्तिकेय—उस पथ का कोई अन्त भी देख रहे हैं क्या गुरुदेव ?

कात्यायन—आदि के साथ-साथ अन्त भी जुड़ा रहता है षडानन !

इन्द्र—उस अंत के लिए देव-रमणियों को कारागार के अंदर और कितने दिन तक अश्रु बहाने होंगे तपश्रेष्ठिन् ?

बृहस्पति—अधिक दिन नहीं, देवेन्द्र ! ऋषि एवं ब्राह्मणों का संयुक्त उपाय मुक्ति का दिन निकट ला देगा ।

इन्द्र—(आश्चर्यजनक हर्ष से) उपाय ?—उपाय है गुरुदेव ??

कार्तिकेय—(प्रसन्नता के स्वर में) देव-रमणियों की मुक्ति का उपाय ! कहिए—कहिए, देवगुरु ! वह कौन-सा उपाय है !

कात्यायन—महिषासुर की मृत्यु का शर-संधान यहीं से होगा देवराज !

इन्द्र—महिषासुर की तो प्रतिज्ञा है कि 'मृत्यु-बाण' विधाता को अपने हाथों तैयार करना होगा !

बृहस्पति—सृष्टिकर्त्ता जब वही है, तब उन्हें छोड़कर और कौन तैय्यार करेगा ! हम लोग तो निमित्तमात्र होंगे !

कार्तिकेय—वरदान में उसने यज्ञ-भाग और अमरता माँगी थी। यज्ञभाग तो उसने शक्ति से प्राप्त कर लिया। रही अमरता, सो ब्रह्मदेव ने उसकी वीरता को अमर तो कर ही दिया।

कात्यायन—यज्ञ-भाग चिरदिन तो नहीं प्राप्त कर सकता ! वीरता अमर हो सकती है, किन्तु महिषासुर अमर नहीं हो सकता।

इन्द्र—किन्तु जिस विराट् पूजा की आयोजना उसने प्रारम्भ की है उसमें यदि वह अटल रहा तो ?

कात्यायन—मृत्यु फिर भी अनिवार्य है। हाँ, मर कर वह अमर हो सकता है।

कार्तिकेय—उसके कार्य में बाधा डाली जाय तो ?

इन्द्र—कैसे ?

कार्तिकेय—वर्तमान अवस्था में बाहुबल से तो संभव नहीं,—बुद्धि-बल से।

बृहस्पति—किस प्रकार ?

कार्तिकेय—महिषासुर के यहाँ गृह-कलह को जन्म दिया जाय। महिषासुर की महारानी को आयत्त में करके महिषासुर के पुत्र को नया प्रह्लाद बनाया जाय। वरुणदेव छद्मरूप में महारानी से मिलकर

उसके पुत्र की शिक्षा का भार अपने ऊपर लें। धीरे-धीरे पत्नी और पुत्र को ही महिषासुर के कार्य में विघ्न बनाकर खड़ा कर दिया जाय।

इन्द्र—विचार उत्तम है।

कात्यायन—इससे उसकी अटलता का परिचय तो मिल जायगा, किंतु उसके पतन का यह उपाय नहीं हो सकता।

बृहस्पति—एक उपाय से उसका पतन भी संभव हो सकता है!

इन्द्र—वह क्या?

बृहस्पति—देवताओं की संघ-शक्ति!

कात्यायन—बन्धुवर, आपने मेरे कंठ की बात कही। मेरा भी यही विचार है। समस्त देवताओं की शक्ति यदि एक स्थान पर केन्द्रित हो जाय, तो उससे महिषासुर का विनाश संभव हो सकता है।

इन्द्र—किंतु वह आधार कहाँ है ऋषिवर,—जो समस्त देवताओं की शक्ति को धारण कर सके?

कार्तिकेय—वह आधार है विधाता के पास। सभी देवगण उनसे प्रार्थना करें कि वे एक ऐसे आधार की रचना करें। वह आधार एक नारी मूर्ति में हो,—और उस नारी को सभी देवगण अपनी-अपनी शक्ति एवं अपना-अपना अस्त्र प्रदान करें। किंतु यह कार्य बहुत गुप्त रूप से होना चाहिए।

कार्तिकेय—महिषासुर विलास-भवन में ही मग्न रहता है। उसे इसका भान भी नहीं हो सकता।

बृहस्पति—ऐसा नहीं सोचना चाहिए! उसका गुप्तचर सर्वत्र फैला हुआ है।

इन्द्र—विधाता इसके लिए प्रस्तुत हो जायँगे?

कात्यायन—क्यों नहीं! वरदान देते हुए उन्होंने कहा ही है कि महिषासुर की मृत्यु एक नारी के हाथ होगी। जब भी आवश्यक

समझा जाय, सृष्टि-कर्त्ता उस नारी का सृजन कर सकते है।

कार्तिकेय—महिषासुर का यही तो कहना है कि ब्रह्मा को उसकी मृत्यु के लिए अपने हाथों एक असाधारण नारी का सृजन करना होगा। इसके लिए वह उन्हें बाध्य भी करेगा। उसकी बात तो सही होने जा रही है।

बृहस्पति—अन्याय और अत्याचार को रोकने के लिए यदि विधि-पुरुष को बाध्य होना भी पड़े तो यह संसार के कल्याण के लिए ही होगा। इससे उनका वचन-भंग तो नहीं होता।

इन्द्र—ब्रह्मदेव यदि उस दिन करुणा न दिखाते तो आज यह दिन देखना नहीं पड़ता!

कात्यायन—करुणा दिखाना अनुचित नहीं, करुणा का लाभ उठाकर उसका दुरुपयोग अनुचित है। (देव गुरु बृहस्पति की ओर दृष्टि करके) चलिए, हम सभी विधाता के पास चलकर उनसे विनति करें।

[चारों उठने को उद्यत]

(पर्दा गिरता है)

द्वितीय दृश्य

विलास-भवन

[दानव-सम्राट् महिषासुर बैठे दिखाई पड़ रहे हैं। चारों ओर विलासिता की सामग्री रखी है। नर्तकियाँ नाच-गान से उनका मनोरंजन कर रही हैं।

नर्तकियों का वसन्त-नृत्य। कुल ग्यारह नर्त्तकियाँ हैं। उनमें एक प्रकृति-रानी बनकर बीच में खड़ी है। नौ उसे चारों ओर से गोलाकार रूप में घेरे नाच रही हैं। एक नर्त्तकी पुरुषरूप धरे 'भौंरा' बनकर बीच-बीच में 'गुन-गुन' स्वर आलापती हुई हरेक के पास नृत्य-रूप में प्रेम-याचना कर रही है।]

पहली नर्तकी—(भ्रमर से)

मत छेड़ो जी, तुम बड़े निठुर! रानी है फूलों की।

(प्रकृति रानी की ओर इंगित करके)

है नया रूप, है नया रंग, सजनी है भूलों की।

सभी नर्तकियाँ— *मत छेड़ो जी.....।*

दूसरी नर्तकी—*देखो तो कितने भोले हैं, कैसा भोला स्वर है।*

तीसरी नर्तकी—*मत विश्वास करो जी इन पर, इनका नाम भ्रमर है।*

चौथी नर्तकी—*तन काला है, मन काला है, गठरी है शूलों की!*

सभी नर्तकियाँ— *मत छेड़ो जी.....।*

पाँचवीं नर्तकी—*प्यार लुटाते सब को ये हैं, कितना मन गहरा है।*

छठी नर्तकी—*आ रहे किधर से आप सजन? देखो, मुख उतरा है।*

सातवीं नर्तकी—*पास नहीं कुछ देखा इनकी नगरी है धूलों की!*

सभी नर्तकियाँ— मत छेड़ो जी.....।

आठवीं नर्तकी—किन पंखुड़ियों में उलझे थे? आए रात बिताकर।

नौवीं नर्तकी—बच के रहना प्यारी सजनी, यह तो धोखे का घर।

पहली नर्तकी—कौन सुनेगी पिछली लड़ियाँ, गाओ तुम फूलों की!

सभी नर्तकियाँ— मत छेड़ो जी.....॥

[गीत-नृत्य लगभग समाप्ति पर ही होता है यानी जब कुछ बाकी रह जाता है, तभी दौवारिक का मस्तक नत किए हुए प्रवेश।]

दौवारिक—सम्राट् की जय हो!

महिषासुर—इस समय क्या समाचार है?

दौवारिक—किसी अत्यावश्यक कार्य से मंत्रिवर इसी समय आप से मिलना चाहते हैं।

महिषासुर—सादर लिवा लाओ! (नर्तकियों से) तुम लोग जा सकती हो।

[एक ओर से नर्तकियों का प्रस्थान। दूसरी ओर से वृद्ध मंत्री का प्रवेश।]

मंत्री—उस असाधारण नारी का पता लग गया?

महिषासुर—(हर्ष-जनक आश्चर्य से अपने स्थान से एकदम उठते हुए) पता लग गया? (स्वर में उच्चता लाते हुए) कहाँ??—कहाँ है वह नारी???—

मंत्री—ऋषि कात्यायन के आश्रम में।

महिषासुर—ऋषि कात्यायन के आश्रम में? क्या तपस्विनी के रूप में?

मंत्री—नहीं, महामाया के रूप में। गुप्तचरों का यह भी कहना

है कि उसकी रचना ब्रह्मा ने की है ।

महिषासुर—उत्तम ! बहुत उत्तम !! महिषासुर,—अंत में तुम्हारी जीत हुई । ब्रह्मा को उस असाधारण नारी का सृजन करना ही पड़ा । इष्टदेव के हाथों बनाए हुए मृत्युबाण का महिषासुर हँसते-हँसते आलिंगन करेगा । वह इसके लिए अपने उन्मुक्त वक्ष को आगे कर देगा । किन्तु;—(**स्वर में परिवर्तन**) इससे पूर्व संसार को महिषासुर अपनी शक्ति का परिचय भी देता जायगा । महिषासुर सहसा झुकने वाला नहीं । इष्टदेव का सम्मान करते हुए भी वह सृष्टि में एक ऐसा भीषण प्रलय लायगा, जिससे त्रिभुवन कंपित हो उठेगा । (**वृद्ध मंत्री की ओर दृष्टि करके, स्वर में तीव्रता को कुछ कम करते हुए**) मंत्रिवर, यदि यह समाचार अक्षरशः सत्य हुआ तो महिषासुर का युद्ध-कौशल संसार चकित होकर देखेगा और प्रजापति की सृष्टि जबतक चलती रहेगी, तबतक महिषासुर को स्मरण किया जाता रहेगा ।

मंत्री—नारी को आधार बनाकर समस्त देवताओं ने अपनी-अपनी शक्ति एक जगह केन्द्रित कर दी ।

महिषासुर—यह और भी कुशल समाचार है मंत्रिवर ! समस्त देवताओं की शक्ति एक ओर, और महिषासुर अकेला एक ओर ! मेरी शक्ति-पूजा की परख तो यहीं होगी । देवगण यदि यह समझे बैठे हों कि महिषासुर भय से अस्त्र डाल देगा तो यह उनकी भूल है । देवगण ही नहीं, उनके साथ त्रिभुवन की सारी शक्ति भी एक ओर हो जाय तब भी महिषासुर के खड्ग में इतना बल है कि वह उनका वीरतापूर्वक सामना कर सके । माता महिषी के दुग्ध से जिसका पोषण हुआ है, जिसके रोम-रोम में मातृ-शक्ति भरी हुई है, वह विश्व की बड़ी-से-बड़ी शक्ति से भी टक्कर ले सकता है ।

[**दौवारिक का शीघ्रता से प्रवेश**]

दौवारिक—सम्राट् की जय हो !

महिषासुर—*क्या समाचार है ?*

दौवारिक—*कारागार का द्वार खोल दिया गया है ।*

महिषासुर—(क्रोध मे) *कारागार का द्वार खोल दिया गया है ? इतना बड़ा साहस किसने किया—*

दौवारिक—*क्षमा हो सम्राट् ! महारानी ने अपने हाथो द्वार उन्मुक्त कर दिया । बन्दिनीगण बाहर निकलकर उनका यशोगान कर रही हैं ।*

महिषासुर—*ओ, तो यह कार्य महारानी का है !* (स्वर में गंभीरता लाते हुए दौवारिक से) *जाओ, उनसे निवेदन करो,— सम्राट् आपको याद कर रहे हैं ।*

[इतने में महारानी अलकावती का प्रवेश ।]

अलकावती—*संवाद भेजने की आवश्यकता नही है, महाराज ! मैं स्वयं आ गई हूँ ।*

महिषासुर—(दौवारिक से) *तुम जा सकते हो ! और देखो,— नगरपाल तक अविलम्ब यह आज्ञा पहुँचाओ कि नगर का सिंहद्वार बंद कर दिया जाय । बंदिनियों मे से कोई भी बाहर न जाने पाय ।*

[दौवारिक का नतमस्तक होकर प्रस्थान]

अलकावती—*अभिप्राय ?*

महिषासुर—(महारानी को कोई उत्तर न देकर, मंत्री को संबोधित करते हुए) *मंत्रिवर, अब और विलम्ब क्यो ? शंख, नगारे, डंका, ढोल, गोमुख, दुन्दुभि, भेरी, तुर्य सब एकसाथ बज उठें और इस भीषण जय-ध्वनि से आकाश-पाताल कंपित करते हुए युद्ध-घोषणा कर दी जाय । चामर, उदग्र, महाहनु और असिलोमा अपनी सुगठित सेनाओं को लेकर उत्तर की ओर एवं ताम्र, अन्धक, उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा दुर्धर दक्षिण की ओर प्रस्थान करें । महावीर कराल को परिवारित और वाष्कल को साथ लेकर पश्चिम की ओर से टूट पड़ने को कहें । प्रधान सेनापति चिक्षुर, बिड़ाल, दुर्मुख एवं प्रलम्ब को साथ*

लेकर पूर्व से सीधे आक्रमण करें।

मंत्री—राजधानी की रक्षा ?

महिषासुर—महिषासुर की तरवारि करेगी।

मंत्री—जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

अलकावती—इस संहार के पथ से लौट चलो स्वामी !

महिषासुर—दैत्य-सम्राज्ञी के मुख से ऐसी बात ? दुर्भाग्य है महारानी ! दैत्य-रमणियाँ अपने हाथों अपने स्वामी को युद्ध के लिए प्रस्तुत करती हैं और तुम !—तुम यह कह रही हो कि मैं अपने रास्ते से लौट चलूँ ! तुम अपने स्वामी को अभी तक नहीं पहचान सकीं !

अलकावती—अब और परिचय न दीजिए नाथ ! विश्व की नारियों का अश्रु-जल प्रलय ला रहा है। उनके क्रन्दन के स्वर से दिशाएँ बधिर हो रही हैं। ऋषि-मुनि एवं ब्राह्मणों का अभिशाप क्या हमारा यह सौध खड़ा रहने देगा ?

महिषासुर—महिषासुर इन बातों से पिघलने वाला नहीं। वह न तो अभिशापों की परवाह करता है और न नारियों के अश्रु-जल से ही भय खाता है। ये तो महिषासुर की शक्ति-पूजा के उपकरण हैं।

अलकावती—तीनों लोक आपके नाम से कंपित होते हैं। नारियाँ आपका नाम सुनकर रोमांचित हो उठती हैं। देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मानव, सिद्ध, योगी, नाग, गन्धर्व, विद्याधर कोई भी तो ऐसी जाति नहीं जो आपके नाम से भय न खाती हो। ऋषियों ने डर से आपको यज्ञ-भाग भी देना प्रारंभ कर दिया। संसार में पूजा-पाठ समाप्त हो गया। त्रिभुवन में आपकी रक्त-ध्वजा फहरा रही है। अब आप और क्या चाहते हैं ? क्या इतने से भी आप संतुष्ट नहीं हैं ?

महिषासुर—नहीं—महारानी नहीं ! तुम महिषासुर को नहीं

समझ सकती कि वह क्या चाहता है।

अलकावती—क्यों नहीं! यह तो बहुत सरल है। दैत्य-सम्राट युग-युग तक आतंक फैला कर राज-भोग करना चाहते हैं!

महिषासुर—जितना सरल तुम समझ रही हो उतना सरल नहीं है, महारानी! महिषासुर संसार से पूजा-पुष्पांजलि चाहता है।

अलकावती—विद्रूप की, घृणा की!

महिषासुर—तो यह समझ लेना होगा कि संसार में वीरों की पूजा कभी नहीं होगी।

अलकावती—नाथ! तपस्या से पूर्व आप कभी ऐसे तो नहीं थे। नारी की करुण-पुकार आपका हृदय दहला देती थी। अब क्या हो गया? इतना बड़ा परिवर्तन!!—आप शक्तिशाली होकर शक्ति का अपमान क्यों कर रहे है?

महिषासुर—कह तो चुका महारानी, तुम महिषासुर को नहीं समझ सकतीं! महिषासुर शक्तिधर है, तो वह शक्ति का सम्मान भी करना जानता है। त्रिभुवन में हर प्रकार के आतंक की सृष्टि का अर्थ एक महाशक्ति का आह्वान है और उस शक्ति से होगा महिषासुर का महा संघर्ष। उसी दिन को निकट बुलाने का यह महा अयोजन है। सृष्टि को आलोड़ित करके विश्व स्मृति-पटल पर चिर दिन के लिए महिषासुर अपना नाम अंकित कर देना चाहता है। उसका रास्ता बीहड़ है, कंटकाकीर्ण है, रक्ताक्त है!

अलकावती—आपके अन्दर क्या हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं?

महिषासुर—कर्तव्य के आगे महिषासुर अपने हाथों हृदय की बलि भी दे सकता है।

अलकावती—क्या आपने कभी इन दिनों एक पिता का हृदय लेकर अपने एक मात्र पुत्र को प्यार भी किया है?

महिषासुर—अलकावती तुम यह समझ रही होगी कि दैत्य—सम्राट

अपने विलास-भवन में ही पड़े रहते हैं। इन्हें राज्य या राजमहल का कुछ भी ज्ञान नहीं। क्यों ?

अलकावती—मैं समझी नहीं।

महिषासुर महिषासुर के असंख्य कान हैं, असंख्य नेत्र हैं। राजमहल की हवा चुपके-चुपके मेरे कानों में सब कुछ कह देती है। मैं सब कुछ सुन कर, सब कुछ देख कर भी अनजान की तरह रहता हूँ, इसलिए कि देखूँगा कौन कहाँ तक बढ़ सकता है।

अलकावती—अर्थात् ?

महिषासुर—अर्थात् यही कि महारानी ने अपने पुत्रके लिए जिस शिक्षक की नियुक्ति की उसकी मुझ से अनुमति लेने को आवश्यकता भी नहीं समझी, यहीं तक नहीं,—उसकी शिक्षा का आधार रहा—देवताओं की स्तुति और दानवों की निन्दा। यानी महिषासुर के अन्तराल में उसके राज-भवन में एक नए प्रह्लाद का निर्माण, क्यों महारानी ?

अलकावती—अपने पुत्र की मगल-कामना का अधिकार भी क्या दैत्य-सम्राट् के राज्य में एक माता को नहीं है ?

महिषासुर—क्यों नहीं ?—बाधा किसने दी ?—किन्तु महारानी दत्य-वंश में आज तक कितने प्रह्लादों ने जन्म लिया ?

अलकावती—राज्य की समस्त प्रजा को क्या सम्राट की इच्छा पर ही चलना पड़ेगा ? क्या आपके राज्य मे विचार-स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं ?

महिषासुर—विचार-स्वतन्त्रता यदि जाति, वंश या राज्य को हानि पहुँचाती हो तो महिषासुर के राज्य में उसका मूल्य प्राण-दण्ड है। (स्वर परिवर्तन) तुम यह न समझो महारानी कि तुम्हारे पुत्र के शिक्षक के बारे में मुझे कोई ज्ञान ही नहीं। महिषासुर शक्तिधर के साथ साथ मायाधर भी है। माया के बल से मुझे यह जानते देर नहीं लगी कि वह शिक्षक वरुण देवता के अतिरिक्त और कोई नहीं, तुम

कह सकती हो कि यह जान कर भी मैं चुप क्यों रहा ?—तो सुनो ! मैं देवताओं के इन षड़यन्त्रों को बहुत ही तुच्छ दृष्टि से देखता हूँ । शक्तिशालियों का यह काम नहीं है ।

अलकावती—फिर यह युद्ध किससे ?

महिषासुर—उस महाशक्ति से जिसकी प्रतिष्ठा में महिषासुर ने यह महायज्ञ रचाया ।

अलकावती—कारागार का द्वार खोल कर मैंने तो बन्दिनियों को मुक्त कर दिया था !

महिषासुर—महिषासुर के लिए यह असह्य है । मेरी राजनीति में हस्तक्षेप करने का किसी को अधिकार नहीं । महिषासुर के शक्ति-यज्ञ में विघ्न बन कर खड़े होने वाले को कोई क्षमा नहीं—क्या यह आज्ञा तुम भूल गईं ?

अलकावती—भूली नहीं-हूँ !

महिषासुर—तो इसका अर्थ, तुमने जान बूझ कर राजाज्ञा का उल्लंघन किया ?

अलकावती—एक नारी के नाते अपना जो कर्तव्य समझा, वही मैंने किया ।

महिषासुर—क्या तुम यह भी भूल गईं कि तुम दैत्य-राज्य की सम्राज्ञी हो ?

अलकावती—अलकावती सम्राज्ञी अवश्य है, किन्तु वह यह भी नहीं भूल सकती कि वह एक नारी भी है । सम्पूर्ण नारी जाति से जहाँ संघर्ष हो, वहाँ अलकावती काठ की पुतली की तरह सम्राज्ञी बन कर दूर नहीं बैठ सकती । सारी नारी-जाति के सुख-दुख में उसका भी सुख-दुख निहित है ।

महिषासुर—(क्रोध से) तो तुम यहाँ तक बढ़ गईं ! जानती हो इसका परिणाम क्या है ?

अलकावती—अलकावती परिणाम से भयभीत होने वाली नहीं !

महिषासुर—रसना संयत करो, अलकावती ! महारानी कह कर तुम्हारा अपराध क्षमा नहीं किया जायगा !

अलकावती—अलकावती—क्षमा की भिक्षा भी नहीं चाहती !

महिषासुर—(क्रोध-पूर्ण आवेश में) कोई है ?

[आवाज सुन कर दौवारिक का नतमस्तक होकर प्रवेश]

दौवारिक—आज्ञा हो सम्राट् !

महिषासुर—महामंत्री को यह अविलम्ब सूचित करो कि राजाज्ञा उल्लंघन करके वंदिनियों को मुक्त करने की चेष्टा करने के अपराध मे महारानी अलकावती को अन्ध-कारागार में डाल दिया जाय। और राजकुमार को दैत्य-वंश के आचरण के विरुद्ध चलने के अपराध में बन्दी बना कर आज से पाँचवें दिन नगर के मध्य जन-समूह के सामने उसका मस्तक-छेदन कर दिया जाय।

[दौवारिक नत-मस्तक होकर चला जाता है]

अलकावती—(हाथ जोड़ कर अनुनय के स्वर में) नाथ ! निर्दोष पुत्र को क्षमा कीजिए। माता को इससे भी कठोर दंड दिया जाय।

महिषासुर—दैत्य-वंश के कलंक को दैत्य-सम्राट् होकर कभी क्षमा नहीं कर सकता। मेरा पुत्र है इसलिए यदि क्षमा कर दूँ तो प्रजा क्या सोचेगी ! महिषासुर के न्याय के आगे स्वजन, पुत्र, परिवार कोई विशेष स्थान नहीं रखता। जाओ,—कारागार का द्वारा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

अलकावती—पुत्र का दंड भी क्या माता अपने ऊपर नहीं ले सकती ?

महिषासुर—पुत्र के द्वारा अपराध कराने से पहले इसे सोच लेना चाहिए था, महारानी ! पिता का हृदय रखते हुए भी जब तक मेरे हाथ में राजदंड है, तब तक मैं पाषाण हूँ, पाषाण के आगे प्रार्थना व्यर्थ है।

अलकावती—पुत्र का तप्त-रक्त, पत्नी का वियोग, संभव है भूले हुए राही को उसके सच्चे रास्ते पर ला दे ! (प्रस्थानोद्यत)

महिषासुर—(सूखी हँसी हँसता है) हः—ह —हः—हः !

(पर्दा गिरता है)

तृतीय दृश्य

ऋषि-आश्रम

[ऋषि कात्यायन एवं देवगुरु बृहस्पति एक ओर खड़े हैं तथा दूसरी ओर इन्द्र और कार्तिकेय। बीच में दुर्गा सुशोभित हो रही हैं।]

कात्यायन— देवराज ! देख लिया न,—महिषासुर अपने मार्ग पर कितना अटल है ! अपनी अर्द्धांगिनी को अन्ध-कारागार में डाल दिया। एक मात्र पुत्र को मृत्यु-दंड दिया ! उसके न्याय के आगे अपना-पराया सब एक समान हैं। यह बात नहीं है कि उसके अन्दर एक सच्चे पति का हृदय नहीं है, एक दयालु पिता का अन्तःकरण नहीं है;—किन्तु राज-धर्म के आगे, अनुशासन के आगे उसने अपने को झुकने नहीं दिया ! निस्सन्देह वह संसार का बहुत बड़ा शासक है। उसकी शक्ति-पूजा की आयोजना का अर्थ विश्व के सभी लोग नहीं समझ सकते।

दुर्गा—उसकी अटलता ने मुझे भी मुग्ध कर दिया।

बृहस्पति—स्वजन, पुत्र, परिवार, राज-पाट सब कुछ की बलि देने को जो तैयार रहे, किन्तु अपनी साधना के पथ से जो एक पग भी विचलित न हो, वह कितना बड़ा तपस्वी हो सकता है, यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है, जगज्जननि !

दुर्गा—उसकी तपस्या का रास्ता ही दूसरा है। उस पर चलने का साहस संसार में कोई-कोई ही कर सकता है।

कार्तिकेय—किन्तु देवि ! महिषासुर की अभिलाषा क्या है ? तीनों लोक उसके आयत्त में, संसार उसके नाम से कँपित होता है, ऋषि-मुनि उसे यज्ञ भाग दे रहे हैं। वह चाहे तो वर्षों राज-भोग

कर सकता हूँ। इससे अधिक वह क्या चाहता है ?

दुर्गा—अपनी शक्ति को चिर आयु देना।

इन्द्र—अर्थात् ?

दुर्गा—दैत्य-शक्ति का नए रंग से नया इतिहास लिखना।

[नेपथ्य में]

'जय महिषासुर की जय !
जय दैत्य-साम्राज्य की जय !!
जय रक्त ध्वजा की जय !!!'

इन्द्र—महिषासुर को सब कुछ ज्ञात हो गया !

कार्तिकेय—उपाय ?

दुर्गा—चिंता न करो ! मैं उन्हें सामने की उपत्यका में युद्ध में उलझाए रखती हूँ। (इन्द्र से) देवेन्द्र, जाओ ! देव-सेनापति को लेकर अपनी बिखरी हुई सेनाओं को एकत्रित करके अविलम्ब दैत्य-राज्य पर आक्रमण करो ! वहाँ बंदी एवं वंदिनीगण को मुक्त करके यथा शीघ्र पीछे से आकर दैत्य-सेना पर टूट पड़ो ! (कात्यायन एवं बृहस्पति से) आप दोनों कुटिया में जायँ !

[चारों का एक ओर प्रस्थान। दूसरी ओर से चिक्षुर का दो-चार सेनाओं के साथ हाथ में नग्न-तरवारी लिए प्रवेश]

चिक्षुर—(अपनी सेनाओं से) यह रही,—यह रही वह नारी !—पकड़ लो !!

दुर्गा—(कटि प्रदेश से तरवारि निकालती हुई) सावधान, सेनापति ! अब एक भी पग आगे मत बढ़ो !

[चिक्षुर एवं उसकी सेनाएँ जहाँ की तहाँ रुक जाती हैं।]

चिक्षुर—एक नारी पर अस्त्र-घात करने के लिए मुझे बाध्य न किया जाय !

दुर्गा—नारी-शक्ति का परिचय संसार को मिलना ही चाहिए। बड़ी खुशी से अस्त्र-प्रयोग कर सकते हो सेनापति ! किन्तु, एक बात-

ऋषि-आश्रम को युद्ध-क्षेत्र न बना कर सामने की उस उपत्यका में चलो ! वहाँ खुल कर अपनी सारी शक्ति का प्रदर्शन कर सकते हो !

चिक्षुर—युद्ध करना नारियों का कार्य नहीं है ।

दुर्गा—तो दैत्य-सेनापति ने नारी का अभी एक ही रूप देखा है ।

चिक्षुर—नारी घर के अन्दर की शोभा है । कोमलता उसका गुण है, लज्जा आभूषण ! चूड़ियों के स्थान पर तरवारि कोमल कर की शोभा को नष्ट कर रही है ।

दुर्गा—नारी संसार की जहाँ जननी है वहाँ यह भी मत भूलो कि वह संहारिणी है । नारी के उसी दूसरे रूप का परिचय देने के लिए ही मैं अवतरित हुई हूँ सेनापति !

चिक्षुर—तो सरल शब्दों में अर्थ यह हुआ कि देवताओं का पौरुष अस्त हो गया है ।

दुर्गा—अस्त नहीं हुआ—नये रूप से नवोदय हुआ है । नारी के कोमल करों में भी कितना बल है—यह अब दैत्य-सेनापति को ज्ञात हो जायगा । उठाओ, अस्त्र सेनापति ! चलो, उस उपत्यका में !

[तरवारि उठाए सबका प्रस्थान ।]

(पट—परिवर्तन)

चतुर्थ दृश्य

उद्यान

[तृतीय अंक के प्रथम दृश्य की तरह वही वृक्ष, वही लता! नीचे श्यामल दूर्वादल। आस-पास रंग-बिरंगे फूल खिले हैं। ऊँचे आसन पर दानवी बैठी है और बगल में दासी श्रुता खड़ी है।]

दानवी—*आश्चर्य है श्रुते! इतनी शक्ति-शालिनी है वह नारी! देवराज इन्द्र को जिन्होंने अपने बाहुबल से एक दिन बन्दी बनाया, उनके साथ युद्ध में, अब भी रण-भूमि में डटी है?*

श्रुता—*यह कोई असाधारण नारी प्रतीत होती है।*

दानवी—*संग्राम दिन पर दिन भीषण से भीषणतर होता जा रहा है।*

श्रुता—*क्षति किंतु अभी दोनों ओर समान है।*

दानवी—*कह नहीं सकती श्रुते, कि इसका अंत कहाँ है!*

श्रुता—*मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है स्वामिनी! देवताओं ने इस बार सारी शक्ति लगा कर आक्रमण किया है।*

दानवी—*लग तो ऐसा ही रहा है कि यह निर्णयात्मक युद्ध है।*

[इतने में एक दैत्य-सेना संदेश-वाहक के रूप में चिक्षुर का संदेश लेकर आता है]

संदेश-वाहक—*महासेनापति चिक्षुर की जय।* (मस्तक नत करके खड़ा हो जाता है)

दानवी—(उत्कंठा पूर्वक आसन से उठती हुई दो पग उसकी ओर आगे बढ़ कर) *कुशल तो हैं! युद्ध का क्या समाचार है?*

संदेश-वाहक—*महासेनापति कुशल पूर्वक हैं। उनकी सहायता के लिए सेनापति कराल भी अपनी सेना के साथ यथा समय पहुँच*

गए हैं। उन्होंने आपका कुशल समाचार मँगाया हैं।

दानवी—जाओ उनसे मेरा कुशल कह देना और यह भी कहना कि दैत्य-रमणियाँ आपकी जय-कामना कर रही हैं।

संदेश-वाहक—जो आज्ञा। (मस्तक नत करके अभिवादन करता है।)

[प्रस्थान]

दानवी—क्यों श्रुते! क्या सोच रही है!

श्रुता—महानाश निकट है स्वामिनी।

दानवी—दैत्य रमणियों के लिए नाश और सृजन एकसा ही है। इसके लिए चिंता क्यों?

श्रुता—दोनों पक्षों का घोर अनिष्ट होगा।

दानवी—युद्ध मे तो ऐसा हुआ ही करता है। इसके लिए हृदय में दुर्बलता क्यों ला रही है श्रुते!

[दूसरा सैनिक पुनः संदेश-वाहक के रूप में प्रवेश करता है।]

सैनिक—महासेनापति चिक्षुर की जय!

[मस्तक नत करके खड़ा हो जाता है]

दानवी—(उसकी ओर आगे बढ़ कर) क्या सामाचार लाए हो सैनिक?

सैनिक—महासेनापति ने आपकी कुशल पूछी है।

दानवी—जाओ, उन्हें मेरा कुशल कह दो!

[सैनिक अभिवादन करके जाने लगता है किन्तु दानवी पुनः उसे रोकती है]

दानवी—(सैनिक को रोकती हुई ठहरो, अपनी तरवारि दो!

[हतबुद्ध हो कर सैनिक खड़ा हो रह जाता है]

दानवी—(कुछ क्रोध-पूर्ण गंभीर स्वर में) सुना नहीं!

[सैनिक शीघ्रता से म्यान से तरवारि निकाल कर देता है]

दानवी—(तरवारि लेती हुई-दासी श्रुता से) श्रुते, जाओ! राज-

महल से एक रजत-पात्र एवं मेरा रक्त-वर्ण उत्तरीय अविलम्ब लेती आओ !

श्रुता—(आश्चर्य से) उत्तरीय और रजत पात्र ?

दानवी—(गंभीरता से) हाँ, उत्तरीय और रजत-पात्र ! अपने स्वामी के पास सँदेश भेजूँगी।

[दासी का असमंजस अवस्था में प्रस्थान]

दानवी—(स्वगत) एक-एक दिन में कई-कई संदेश-वाहक का आना यह साफ बता रहा है कि उन्हें युद्ध से अधिक मेरा ध्यान है। अर्थात् मेरे कारण तन-मन से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो पा रहे हैं। दैत्य-सम्राट् महिषासुर,—नहीं, पहले मेरा भाई ! मेरे भाई के इस महा-यज्ञ का प्रधान सहायक यदि अपने कर्तव्य से विचलित हो जाय तो इसके लिए दोषी कौन ? मैं ही न ! मेरे ही कारण तो वे दत्तचित्त होकर युद्ध में ध्यान नहीं दे पा रहे फिर मैं अपने भाई के आगे क्या उत्तर दूँगी ! दैत्य-जाति के आगे कौन सा मुँह लेकर खड़ी हूँगी ! नहीं,—ऐसा कभी नहीं हो सकता ! भाई महिषासुर,—तुम्हारी पूजा के प्रधान सहायक को विचलित—नहीं होने दिया जायगा। जब तक बहन दानवी जीवित है, तब तक ऐसी कोई आशंका नहीं की जा सकती। (सैनिक की ओर दृष्टि करके) सैनिक ! तुम उनके अंतिम संदेश-वाहक होगे। अब और किसी संदेश वाहक को भेजने की आवश्यकता नहीं होगी। दानवी अपना कुशल भेजेगी ऐसे शब्दों में, ऐसी लिपि में, जिसे युग-युग तक लोग दंग होकर पढ़ते रहेंगे। अपने भाई के महा-यज्ञ में वह आहुति डालेगी,—अपने हाथों अपना मस्तक काट कर !

[तरवारि शून्य में उत्तोलन करती है। सैनिक कुछ भय से चिल्ला उठता है]

सैनिक—स्वामिनी !

दानवी—धैर्य धरो सैनिक ! तुम एक संदेश-वाहक हो। तुम्हें जो

संदेश दिया जाय उसे अपने महासेनापति तक पहुंचा दो !

[इतने में एक चाँदी की थाली एवं लाल रंग का एक दुपट्टा लेकर दासी श्रुता का प्रवेश]

दानवी—कौन ?—श्रुते ! आ गई । अच्छा है । देखो,—इस रजत-पात्र पर मेरा कटा हुआ मस्तक और यह तरवारि रख कर उसे मेरे इस उत्तरीय से ढक देना एवं इस सैनिक के हाथ में दे देना ।

श्रुता—(हैरानी से) यह क्या कह रही हैं स्वामिनी ?

दानवी—ठीक ही कह रही हूँ श्रुते ! उन्हें मेरा कुशल संदेश चाहिए, भाई को प्रधान सहायक का पूर्ण सहयोग चाहिए और मुझे चाहिए उनकी विजय । ये तीनों बातें तभी संभव हो सकती हैं, जब कि मेरी ओर से उनका ध्यान निश्चिंत हो जाय ।

श्रुता—इस भयानक संदेश को देख कर तो वे पागल हो उठेंगे ।

दानवी—मैं उन्हें पागल ही बनाना चाहती हूँ, श्रुते ! सब ओर से ध्यान हटा कर पागल बन कर युद्ध में संलग्न हों जायँ;—तभी संसार को यथार्थ मे उनके अस्त्र का परिचय मिलेगा ।

श्रुता—(करुण एवं नम्रता के स्वर में) एक बार पुनः सोच लें, स्वामिनी !

दानवी—जो कुछ सोचना था, सोच चुकी । दानवी वीर-जाया है । अपने प्रेम को वह लज्जित करना नहीं चाहती । साधारण नारी की तरह अपने स्वामी को कर्तव्य के पथ से विचलित करके, बाहुपाश में आबद्ध किए रखने की ही एक मात्र इच्छा वीर-रमणियों को नहीं हुआ करते । वह देखो—(पीछे वृक्ष और लता की ओर इशारा करती हुई) इसी लता, इसी वृक्ष के नीचे एक दिन मैंने अपने हाथों विजयमाला—पहना कर उन्हें पति-रूप में वरण किया था । आज इसी वृक्ष के नीचे अपने हाथों अभिनव प्रेम-संदेश भेजूँगी ।

[दानवी हाथ की तरवारि को ऊपर उठाती हुई पीछे मुड़ कर पर्दे पर चित्रित लता-युक्त वृक्ष के नीचे जाने को उद्यत होती है]

(पर्दा गिरता है)

पंचम दृश्य

(दैत्यपुरी

[महिषासुर दानवी के मस्तक काट कर भेजने का समाचार पाकर अर्द्ध पागल की अवस्था में कभी इधर, कभी उधर पद-संचालन करते हुए दिखाई पड़ रहा है]

महिषासुर—(स्वगत) भाई के लिए बहन का अपूर्व बलिदान ! और यज्ञ के प्रधान सहायक के अन्दर कहीं शिथिलता न आने पाय इसलिए उसने अपना मस्तक काट कर ही भेज दिया। खूब !—खूब ! दानवी !—तुम्हारा यह बलिदान महिषासुर ही नहीं, समस्त दैत्य-जाति युग-युग तक स्मरण रखेगी। (स्वर बदल कर) किंतु बहन क्या तुमने अपने भाई की ओर एक बार भी आँख उठा कर नहीं देखा। उसके हृदय पर इसका कितना बड़ा आघात लगेगा क्या कुछ भी ध्यान नहीं किया ! एक मात्र पुत्र को मैंने मृत्यु-दंड दिया, भाभी को अन्ध कारागार में डाल दिया,—सिंहासन की सीमा के भीतर रह कर किंतु उस सीमा के बाहर तो मेरे अंदर का पिता, मेरे अंदर का पति तो रो ही रहा है न !—हाहाकार के इस दुर्दिन में मेरे अंदर के भ्रातृ-हृदय को भी तुमने रुला दिया ! यह तुमने क्या किया बहन ? (कुछ सचेत होकर) नहीं,—नहीं;—महिषासुर को इतना दुर्बल होना शोभा नहीं देता। बहन के बलिदान ने भाई को और भी दृढ़ बना दिया। उसकी मृत्यु मुझे यही संकेत कर रही है कि कर्तव्य के आगे भावना का कोई स्थान नहीं। (स्वर में दृढ़ता) जागो !—जागो ! मेरे अन्दर के दानव। एक पर एक आघात तुम्हें और भी कठोर बना रहे है। नहीं;—कभी नहीं ! अब मैं अपनी दुर्बलता को पास नहीं फटकने दूँगा। महिषासुर त्रिभुवन का सम्राट् है। वह किसी एक का

पति नहीं, एक का पिता नहीं;—एक का भाई नहीं ! वह महा कठोर है,—वह पाषाण है !

[इतने में दौड़ता हुआ दौवारिक का प्रवेश]

दौवारिक—(स्वर में चंचलता) महाराज की जय हो ! (नत मस्तक होकर खड़ा होता है)

महिषासुर—इतने चंचल क्यों हो रहे हो ? क्या समाचार है ?

दौवारिक—(पुनः घबराए हुए स्वर में) सिंहद्वार के पृष्ठ-देश से अचानक देव-सेना ने आक्रमण कर दिया। राजकुमार का मृत्यु-दंड दिया ही जाने वाला था कि भीड़ पर सेना टूट पड़ी और कुमार को देव-सेना ने बचा लिया। राजकुमार का कोई पता नहीं चल रहा है। दैत्य-पुरी से उन्हें हटा दिया गया है।

[इतने में नेपथ्य में घोर जय-ध्वनि।]

'जय देवराज इन्द्र की जय।
जय देव सेनापति कार्तिकेय की जय।'

दौवारिक—वह सुनिए सम्राट् ! नगर पर देव-सेना ने अधिकार कर लिया।

महिषासुर—(गंभीर स्वर में) ओः ! तो षड्यन्त्र यहाँ तक पहुँचा ! चिंता मत करो, दौवारिक, महामंत्री को अविलम्ब सूचित करो कि जो भी सेना है, उसे एकत्रित करके काल-द्वारा की ओर से जा कर देवता को घेर लें। सम्मुख से मैं उनका गति रोध करता हूँ।

दौवारिक—जो आज्ञा ! (नत मस्तक होकर चला जाता है)

[नेपथ्य से पुनः घोर जय-ध्वनि]

'महाराज इन्द्र की जय।
देवसेनापति कार्तिकेय की जय॥'

[महिषासुर तरवारि निकाल कर दृढ़ होकर खड़ा हो जाता है। इन्द्र का तरवारि लिए प्रवेश]

दौवारिक—कहाँ है ?—कहाँ है वह कारागार ??- (अचानक

महिषासुर को सम्मुख खड़ा देख कर रुक जाता है)

महिषासुर—(गंभीर स्वर में) *कारागार का द्वार महिषासुर ने बहुत पहले ही मुक्त कर दिया पुरन्दर ! किंतु देव-सेना के भय से नहीं !—कारागार के इन बंदी बांदनियों से अब मुझे कोई आवश्यकता नहीं रही। महिषासुर को जिस नारी की खोज थी, वह उसे मिल गई। इन्हें तुम ले जा सकते हो देव-सम्राट् ! किंतु, एक बात। महिषासुर की सेना को उधर युद्ध में उलझाए रख कर तुमने नगर के निरीह प्रजा पर आक्रमण करके अपनी वीरता पर एक बार फिर कालिख पोत ली।* (क्रोध-पूर्ण स्वर में) *अविलम्ब यह रक्त-पात बन्द करो !—नहीं तो इसका भयंकर परिणाम तुम्हारी आँखों के सम्मुख उपस्थित होगा। महिषासुर यह नहीं चाहता कि तुम जैसे कायरों पर अस्त्र-घात करे !*

[नेपथ्य से घन-जय-ध्वनि]

'जय महिषासुर की जय ।
जय दानव-सम्राट् की जय ॥'

महिषासुर (व्यंग से) *क्यों, क्यों, देवराज ! दैत्यपुरी बिलकुल* अरक्षित *है न ! सोचा होगा,—महिषासुर की सेना तो उधर फँसी है। यही सुअवसर है। दैत्यपुरी पर आक्रमण कर दिया जाय।* (विद्रूप की हँसी) *हः हः हः हः !*

[इतने में वृद्ध मंत्री का हाथ में तरवारि लिए द्रुतगंग से प्रवेश]

मंत्री—*सम्राट !* अचानक इन्द्र पर दृष्टि पड़ते ही) *कौन इन्द्र !*

(घृणा-भाव से उसकी ओर देखने लगते हैं)

महिषासुर—(गंभीर स्वर में) *क्या समाचार है मंत्रिवर ?*

मंत्री—(इन्द्र की ओर से दृष्टि हटाते हुए) *देव-सेना घेरे में आगई।*

महिषासुर—*हमारी सूचना आपको समय पर मिल गई थी ?*

मंत्री—*आपकी सूचना से पहले ही आवश्यक सेना लेकर गुप्त मार्ग से चल चुके थे।*

महिषासुर—खूब ! तो इसका अर्थ आप जैसे योग्य व्यक्ति के रहते दैत्यपुरी की सुरक्षा को हमें कोई चिंता ही नहीं, (इन्द्र से) अब भी अविलम्ब नगर से अपनी सेना हटा लो, पुरन्दर !

इन्द्र—देव-सेना अपनी शक्ति के बल पर बंदी एवं बंदिनियों को मुक्त करने आई है ।

महिषासुर—वृथा अभिमान मत करो देवराज ! यह मत भूलो कि इस समय तुम दैत्य-सम्राट् के कृपा-पात्र हो !

[इतने में शची का आनन्दातिरेक से दौड़ती हुई प्रवेश]

शची—कहाँ है ?—कहाँ है देव-सेना ! कहाँ हैं मेरे स्वामी !!

[सम्मुख महिषासुर, वृद्ध मंत्री एवं इन्द्र को देख, ठिठक कर खड़ी हो जाती है]

शची—(इन्द्र की ओर देख कर हर्ष से) स्वामी !

इन्द्र—(हर्ष-जनक आश्चर्य से) कौन—शची ।

महिषासुर—हाँ, देवेन्द्र ! यह शची ही है । बहुत दिनों बाद तुम्हारा मिलन हो रहा है । इसलिए हम बाधक नहीं बनना चाहते । (मंत्री से) मंत्रिवर, आप जाइए,—देव-सेना पर सतर्क—दृष्टि रखिए ।

[मंत्री का प्रस्थान]

महिषासुर—(इन्द्र से) नगर में रक्तपात न होने पाय देवेन्द्र ! वीर हो तो वीर की भाँति कल प्रत्यूष में महिषासुर से युद्ध-भूमि में मिलो ।

[महिषासुर का प्रस्थान]

(पट-परिवर्तन)

षष्ठ दृश्य

ऋषि-आश्रम

[बृहस्पति एवं कात्यायन दोनों खड़े-खड़े विचार-विमर्श करते हुए]

कात्यायन—महिषासुर का युद्ध-संचालन देख रहे हैं, बन्धुवर ?

बृहस्पति—अपूर्व ! इससे तो ज्ञात हो रहा है कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त होने वाला नहीं ।

कात्यायन—किंतु, अब यह विराट् संहार तो रोकना ही होगा ! चारों ओर प्रलय का दृश्य ! जगह-जगह रक्त की नदियाँ बह रही हैं। कहीं दैत्य-सेना के कटे हाथ, कटे पाँव, कटे धड़, कटे मुंड विभिन्न विभीषिकाओं की सृष्टि कर रहे हैं तो कहीं ढेर देव-सेना क्षत-विक्षत होकर अज्ञानावस्था में पड़ी हैं । कराल, उदग्र, माया आदि सेनापति के निधन के समाचार एवं अपनी प्यारी भार्या दानवी के कटे सिर को देखकर चिक्षुर तो पागलों की तरह देवी एवं देव-सेना पर टूट पड़ा । कितना भयंकर युद्ध !—यह कुशल समझिए कि देवी ने समय पर उसका वध कर दिया । नहीं तो, न जाने क्या अनर्थ हो गया होता !

बृहस्पति—शक्ति में दानव भी कम नहीं । चिक्षुर के निधन से दैत्य-सेना को गहरी क्षति पहुँची, एक बार तो यह अनुभव हुआ कि युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो जायगा । किंतु, न जाने कहाँ से दैत्य-सेना के झुंड-के झुंड रणभूमि में कूद पड़े । जैसे सभी सेनापति हों । दैत्यपुरी जैसे सेनाओं की खान हो । इधर चिक्षुर के वध के समाचार से उन्मत्त महिषासुर ने भयंकर रूप से देवी पर आक्रमण कर दिया है ।

कात्यायन—तभी तो कह रहे हैं मित्रवर ! संहार की आग बुझने के स्थान पर और भी भड़कती जा रही है । कुछ दिन और यदि इसी प्रकार युद्ध की ताण्डव-लीला चलती रही तो महानाश सम्मुख है ।

बृहस्पति—युद्ध दिन पर दिन लम्बा इसलिए होता जा रहा है कि महिषासुर शक्तिधर के साथ-साथ मायाधर भी है। कभी गज, कभी सिंह, कभी महिष मूर्ति धारण कर धरती को हिला देता है, पहाड़ तोड़कर गिराता है, वृक्ष के वृक्ष ही उखाड़कर विपक्षी पर टूटता है। देवी के अस्त्रों को बड़ी खूबी के साथ रोकता है,—फिर नया प्रहार करता है।

कात्यायन—महिषासुर की युद्ध - कला ने विगत सारे असुरों को मात दे दी।

बृहस्पति—देवी के आगे तो वह किसी और को कुछ गिनता ही नहीं। देव-सम्राट् एवं देव सेनापति को तो अस्त्र-प्रहार का अवसर ही नहीं देता।

कात्यायन—यह महा-युद्ध अब रुकना ही चाहिए। देवी भी भीषण रूप धारण करती जा रही हैं। कहीं प्रलय ही न आ जाय। युद्ध से युद्ध नहीं रोका जायगा। कोई अन्य उपाय ढूँढ़ना ही होगा।

बृहस्पति—एक उपाय है बन्धुवर!

कात्यायन—कैसा ·

बृहस्पति—महिषासुर परम मातृ-भक्त है। महिषी की आज्ञा का वह उल्लंघन नहीं करेगा। देव-माता—अदिति—को महिषी के पास भेजा जाय,—यह संदेश लेकर कि अब यह रक्त पात बन्द कर दिया जाय। एक स्त्री दूसरी स्त्री को समझाने में अधिक सफल हो सकती है। आशा है महिषी मान जायगी। इस प्रकार युद्ध-विराम से लाखों संतानों के प्राण बच जायँगे। इधर हम दोनों सृष्टि कर्त्ता के पास चल-कर प्रार्थना करें, कि वे महिषासुर को जिस प्रकार हो युद्ध बन्द करने के लिए प्रस्तुत करें। संसार अब शांति चाहता है।

कात्यायन—विचार उत्तम है। चलिए,—ऐसा ही किया जाय।

[दोनों का प्रस्थान]

(पट-परिवर्तन)

सप्तम दृश्य

युद्ध-भूमि

[रणचंडी का बाल खोले, लम्बी-लाल जिह्वा निकाले, हाथ में खप्पर लिए दौड़ती हुई प्रवेश। वेष-भूषा में भयंकरता टपकती है। जैसे चेहरे का रंग काला, ऊपर से नीचे तक काला वस्त्र, शरीर पर जहाँ-तहाँ रक्त की धार, रक्त के निशान, गले में हड्डियाँ और मुंडों की माला आदि।]

रणचंडी—(विकट और अजीब भयंकर हँसी हँसती हुई) *हीः हीः हीः हीः ! हाः हाः हाः हाः !! खूब ! खूब,—महिषासुर ! देवी ! वर्षों की मेरी प्यास अब बुझने जा रही है। खप्पर भर-भर कर लाल-लाल रक्त ! लड़ो, खूब लड़ो !*—(फिर वही विकट अजीब हँसी) *हाः हाः हाः हाः ! हीः हीः हीः हीः !!*

[दौड़ती हुई एक ओर प्रस्थान। दूसरी ओर से महिषासुर एवं दुर्गा का रणोन्मत्त अवस्था में हाथ में शोणित-युक्त तलवार लिए युद्ध करते हुए प्रवेश। दुर्गा के दूसरे हाथ में त्रिशूल है। युद्ध चलता ही रहता है।]

दुर्गा—*रुको, महिषासुर ! अब भी रुको !*

महिषासुर—*जबतक प्रलय नहीं आ जाता, तबतक नहीं। इतिहास कैसे स्मरण रखेगा नारी ! युद्ध दो ! अविराम युद्ध !!— महिषासुर रुकना नहीं जानता।*

दुर्गा—*मृत्यु अनिवार्य है।*

महिषासुर—*मृत्यु से महिषासुर नहीं डरता।*

दुर्गा—*तुम क्या चाहते हो ?*

महिषासुर—*वही एक बात,—अमरता और पूजा।*

दुर्गा—*तुम्हारी सेना अब कहाँ रही ?*

महिषासुर—रणभूमि से भाग तो नहीं गई। वीरों की भाँति वीर-गति प्राप्त की; इसमें चिंता क्या! जबतक महिषासुर जीवित है, यह संग्राम चलता रहेगा।

दुर्गा—संहार रोकना चाहते हो तो संधि कर लो!—दैत्य-पुरी का राज्य तुम्हें दिया जायगा।

महिषासुर—दैत्य-पुरी का राज्य तो अब भी मेरा है। यह न भी रहे, तब भी महिषासुर को कोई चिंता नहीं। स्वजन, पुत्र, परिवार राज-पाट सब कुछ खोकर भी वह अपनी कामना पूरी करके रहेगा। उसे प्रलोभन न दो नारी! युद्ध दो!—युद्ध!!—अविराम युद्ध!!!

[इतने में ब्रह्मा का हाथ में कमंडलु लिए प्रवेश। पीछे-पीछे बृहस्पति एवं कात्यायन आते हैं।]

ब्रह्मा—अब और युद्ध नहीं वत्स! शांत हो। (हाथ उठाकर शांत होने को कहते हैं। युद्ध रुक जाता है) तुम्हारी पूजा की परीक्षा हो चुकी। कुछ दिन पूर्व तुमने घोर तपस्या से मुझे मुग्ध कर लिया था। किंतु उस दिन तुम्हारी कामना में भोग की वासना थी। आज तुम्हारे इस शक्ति-यज्ञ में वह भोग की वासना नहीं रही। अब तुम अमरता एवं पूजा के पात्र हो! किंतु सृष्टि के विधान के अनुसार एक-बार मृत्यु को वरण तो करना ही होगा।

[दूसरी ओर से वृद्धा के रूप में महिषी एवं अदिति का प्रवेश।]

महिषी—रुको, वत्स! अब और नहीं। मेरी अब कोई अभिलाषा नहीं रही। घर-घर में क्रन्दन का रोदन अब नहीं सुना जाता। स्त्रियों का हाहाकर, बच्चों की करुण पुकार अंतर को दहला रही है। मैं कहती हूँ महिष! अब युद्ध बन्द कर दो!

महिषासुर—(माता महिषी एवं इष्टदेव ब्रह्मा दोनों के आगे नत जानु होकर अभिवादन व्यक्त करते हुए) जननी एवं इष्टदेव दोनों का आदेश शिरोधार्य है।

महिषी—(दुर्गा की ओर अंगुलि निर्देश करती हुई) ये जग-

जननी हैं। इनका ही अंश मुझमें है। इसलिए ये भी तुम्हारी मा हैं। इन्हें यथोचित मातृ-सम्मान प्रदान करो वत्स !

महिषासुर—(नत-जानु की अवस्था में ही तलवार झुकाकर) *प्रणाम जननि ! (अपने उन्नत वक्ष को कुछ आगे करके) अपने इस उद्धत-पुत्र को क्षमा करो माँ !*

दुर्गा—मैं तुम्हारी शक्ति से मुग्ध हूँ वत्स ! मैं तुम्हें वरदान देती हूँ कि मेरी पूजा के साथ-साथ संसार तुम्हारी भी पूजा करेगा।

[इतने में इन्द्र, कार्तिकेय, शची, महिषासुर की पत्नी अलकावती एवं महिषासुर का ७-८ साल का छोटा लड़का—सभी आ जाते हैं। सभी हाथ जोड़कर देवी दुर्गा को प्रणाम करते हैं।]

वृहस्पति—यह भी अच्छा रहा कि तुम सभी आ गए। (महिषासुर से) वीर श्रेष्ठ ! अब अपनी भार्या एवं पुत्र को क्षमा प्रदान कर दो !

[अलकावती एवं राजकुमार महिषासुर को प्रणाम करते हैं।]

महिषासुर—(नत जानु की अवस्था से उठकर पुत्र को छाती से लगाते हुए एवं कुछ क्षण बाद महारानी अलकावती के हाथ में उसका हाथ पकड़ा कर) *जाओ, पुत्र ! आजीवन मातृ-आज्ञा पालन करो !*

इन्द्र—(महिषासुर से) धन्य हो वीर ! इतिहास में तुम्हारा नाम उज्ज्वल अक्षरों में लिखा जायगा।

महिषासुर—(दुर्गा के आगे पुनः नत-जानु होकर) *महिषासुर की मनोकामना पूरी हो गई, माँ !* **(अपने विशाल वक्ष को आगे करते हुए)** *आओ, त्रिशूल धारिणी ! अपने त्रिशूल से महिषासुर को मृत्यु प्रदान करो !*

[ऋषि कात्यायन कहते जाते हैं और ब्रह्मा जी के अतिरिक्त हाथ जोड़ कर सभी उसे उच्चारित करते हैं]

"या देवी सर्व भूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै। नमस्तस्यै। नमस्तस्यै नमो नमः ॥"

[दुर्गा अपना त्रिशूल महिषासुर के वक्ष से लगा देती हैं]

(यवनिका)

हमारा नाटक-साहित्य

विष-पान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१॥)
स्वप्न-भंग	,,	१॥)
उद्धार	,,	२)
छाया	,	१)
शपथ	,,	२॥)
साथी	,,	२)
बादलों के पार	,,	३)
समर्पण	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'	१॥।)
आदिम युग	उदयशंकर भट्ट	३)
शक-विजय	,,	३)
विश्वामित्र वो भाव-नाट्य	,,	३)
उर्मिला	पृथ्वीनाथ शर्मा	१)
सुभद्रा-परिणय	वीरेन्द्रकुमार गुप्त	२)
एकांकी-समुच्चय	जयनाथ 'नलिन'	३)
समस्या-नारी	पृथ्वीनाथ शर्मा	१।)
ऐतिहासिक दृश्य	श्यामलाल	१)
सफर की साथिन	रामसरन शर्मा	१॥।)
मानव प्रताप	देवराज 'दिनेश'	१॥)
पग-ध्वनि	चतुरसेन	१॥)
शान्ति-दूत	देवदत्त 'अटल'	१।)